88/96

जागृत चीन

सम्पादक
रामनारायण मिश्र
वार्षिक मूल्य ३)
Annual Subs. Rs. 3

इस अङ्क के सहकारी सम्पादक
भगवती प्रसाद श्रीवास्तव
एम० एससी०
इस अंक का मूल्य ॥)
Single Copy As. 8

88/96

"चीन-अङ्क"
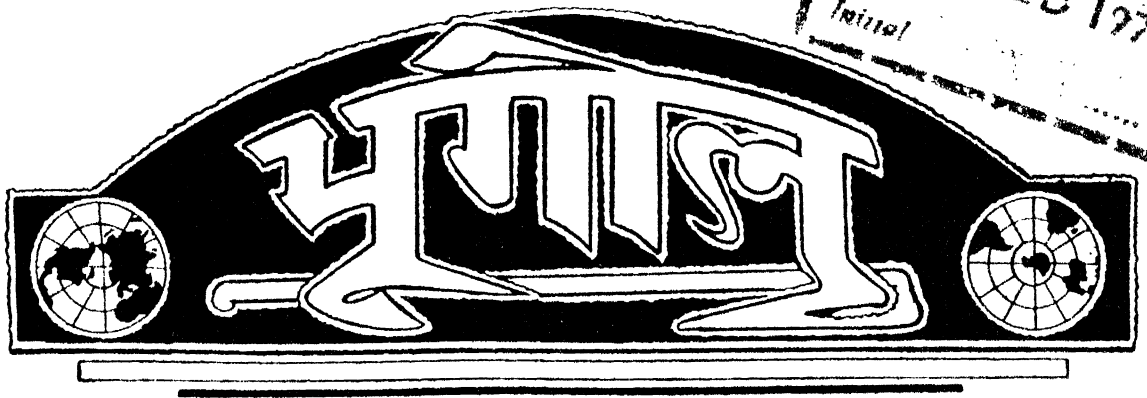
यह पत्र संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बरार, बिहार, उड़ीसा, पंजाब प्रान्त तथा ग्वालियर, जैपुर, जोधपुर और कोटा राज्य के शिक्षा-विभागों द्वारा हाई, नार्मल और मिडिल स्कूलों में प्रयोग होने के लिये स्वीकृत है।

वर्ष १४] माघ सं० १९९४, जनवरी १९३८ [सं० ५

चीन की स्थिति

स को छोड़ कर चीन देश क्षेत्रफल में संसार भर में सब से बड़ा देश है। उत्तर में साइबेरिया (५३ अक्षांश) से लेकर चीन देश दक्षिण में (१८ उत्तरी अक्षांश) उष्ण कटिबन्ध तक फैला हुआ है। पश्चिम में (७४ पूर्वी देशान्तर) अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में पीले सागर (१३४ पूर्वी देशान्तर) प्रशान्त महासागर तक चला गया है। इस विशाल देश का क्षेत्रफल लगभग ४३ लाख वर्गमील है जो सारे योरुप से कुछ बड़ा और भारतवर्ष से दुगुना है। सारे चीन देश में लगभग ४८ करोड़ मनुष्य रहते हैं। इतनी घनी आबादी संसार के किसी और देश की नहीं है। जितनी आबादी सारी दुनिया में है उसकी ¼ अकेले चीन में रहती है।

उत्तर की ओर लगभग ३००० मील तक साम्यवादी सोवियट रूस का प्रजातन्त्र प्रदेश चीन की सीमा बनाता है। प्रशान्त महासागर चीन की पूर्वी सीमा बनाता है। दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर चीन देश चीन सागर, इण्डोचीन और ब्रह्मा से घिरा हुआ है। चीन का समुद्र-तट कई सौ मील लम्बा है। लेकिन तट से भीतर की ओर प्रवेश करने के लिये नदियों के मुहाने और कुछ बन्दरगाह ही अनुकूल हैं। जब से जापान ने तट को घेर लिया तब से बाहरी देशों से बारूद और दूसरा सामान मँगाने के लिये कुछ ही स्थान शेष बचे। सिक्यांग के लम्बे स्थल मार्ग से सोवियट रूस से सामान आ सकता है। यूनान के दुर्गम पहाड़ी प्रान्त में होकर फ्रेञ्च इण्डो-चीन का सामान आ सकता है।

जहाँ चीन में एक ओर अत्यन्त उपजाऊ और घनी आबादी वाले मैदान हैं वहीं दूसरी ओर इसकी सीमा के भीतर ऐसे निर्जन और निर्जल रेगिस्तान हैं कि उधर होकर जाने की कोई मनुष्य हिम्मत नहीं करता है।
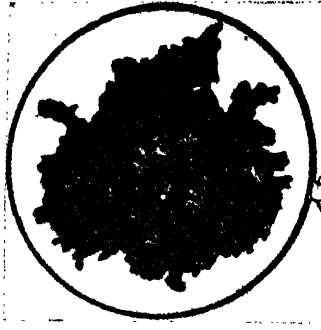
भूरचना

प्रधान चीन की संस्कृति और प्राकृतिक विभाग को समझने के लिये यहाँ की भूरचना का जानना आवश्यक है। भूरचना के अनुसार चीन कई भागों में बँटा हुआ है।

उत्तरी ऊँचे भाग का पश्चिमी प्रदेश

इस भाग में अधिकांश कान्सू प्रान्त और शेन्सी प्रान्त का उत्तरी भाग शामिल है। इसके उत्तर की पहाड़ियाँ इसे मंगोलिया के पठार से अलग करती हैं। दक्षिण में क्विनलुन पर्वत है। इस प्रदेश के निचले पूर्वी भाग में लोयस (हवा के साथ लाई हुई बारीक पीली मिट्टी) मिट्टी घिरी हुई है। इसी से इसे उत्तरी-पश्चिमी चीन का लोयस पठार कहते हैं। लेकिन इस बड़े भाग में कई पर्वत श्रेणियाँ हैं जिनकी ऊँचाई कहीं कहीं २०००० फुट तक पहुँच गई है। इसी प्रदेश में ह्वाँगहो नदी पथरीली तली बनाकर बहती है। ह्वाँगहो नदी दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर बहती है। यहाँ पर ह्वाँगहो नदी का बायाँ किनारा ऊँची पर्वत-श्रेणियों से घिरा हुआ है। इन पर्वतों को अक्सर नानशान (दक्षिणी पर्वत) के नाम से पुकारते हैं। नानशान पर्वत आलतीनताग पर्वत का ही सिलसिला है। दक्षिण की ओर क्विनलुन पर्वत से मिली हुई पहाड़ियाँ हैं जो अन्त में पूर्व की ओर सिंगलिंग पर्वत के नाम से विख्यात हैं। सिंगलिंग पर्वत ही उत्तरी चीन और दक्षिणी चीन के बीच में सीमा बनाता है। सिंगलिंग के उत्तर में ह्वाँगहो के दाहिने किनारे से लोयस का पठार पूर्व की ओर फैला हुआ है।

उत्तरी पर्वतों की तीन प्रधान श्रेणियाँ हैं। धुर उत्तर में शानतान पर्वत है। यह कानचाओ से ल्याँग-चाओ को जाने वाली पुरानी सड़क के उत्तर में है और मंगोलिया को चीन से अलग करता है। इसी के किनारे किनारे चीन की बड़ी दीवार का मार्ग है। ओसिस के ऊपर इन खुश्क पहाड़ों की अधिक से अधिक ऊँचाई केवल ५००० फुट है। इसलिये उत्तरी घुमक्कड़ लोगों को चीन में हमला करने से रोकने के लिये पहाड़ों की ऊँचाई काफी नहीं है। पहाड़ों की खुश्की असली बाधा डालती है। ऊँचाई की कमी को दूर करने के लिये ही बड़ी दीवार की रचना हुई। इसके दक्षिण में नानशान का बर्फीला पहाड़ है। प्रशान्त महासागर से आने वाली भाप भरी हुई हवाओं को यहाँ पहुँचते पहुँचते समुद्र तल से २०००० फुट ऊँचा चढ़ना पड़ता है। अधिक ऊँचाई पर इन हवाओं की भाप बरफ के रूप में गिरती है। इसी से नानशान पर्वत की चोटियाँ बरफ और घाटियाँ हिमागारों से घिरी हुई हैं। पहाड़ों पर बन और घाटियों में चरागाह हैं। इस पर्वत और तातुंग नदी की घाटी के बीच में लागिओबो प्रधान दर्रा है। ह्वाँगहो के दक्षिण में सीकिंगशान और मीनशान की दो पर्वत श्रेणियाँ हैं। इनका रुख उत्तर-पूर्व की ओर है। यह क्विनलुन पर्वत के ही सिलसिले हैं। इनकी चोटियाँ नंगी और खुश्क हैं। दर्रे लगभग १०,००० फुट ऊँचे हैं।

इस प्रदेश में ह्वांगहो नदी का ऊपरी भाग है। यह नदी ओ-दो-ताला के ऊंचे मैदान में ओरीन झील से निकलती है। यहां से १५० मील की दूरी पर कान्सू प्रान्त में पहुँचने पर नदी कटिया के (S) के आकार का मार्ग बनाती है और ८००० फुट से नीचे

उतर कर तानचाओ के पास केवल ५२०० फुट ऊंची रह जाती है। किनलुन की एक पहाड़ी नदी को उत्तर की ओर मोड़ देती है। फिर वह पूर्व को ओर घूमती है। अन्त में अचानक दक्षिण की ओर मुड़ कर तुंगक्वान (पूर्वी द्वार) शहर के पास पहुँचती है। नदी से तीन ओर घिरे हुए पठार को आर्डोस कहते हैं। लांगचाओ से तुंगक्वान का नदी का मोड़वाला मार्ग १२०० मील लम्बा है। लांगचाओ और तुंगक्वान के बीच में सीधी दूरी केवल ३०० मील है। इस लम्बे मार्ग में नदी का उतार प्रति मील औसत से केवल ४ फुट है। इसी से यहां नदी में नावें खूब चलती हैं। पहले नदी का मार्ग कुछ तंग और धारा तेज़ है। आगे बढ़ कर पीले रेगिस्तान के ऊपर ही की चौड़ाई ४०० गज हो जाती है। होकाओ और तुंगक्वान के बीच में नदी का ३०५ मील लम्बा मार्ग शेन्सी और शान्सी प्रान्तों के बीच में सीमा बनाता है। यहां नदी २००० फुट नीचे उतर आती है। इस ओर कोयला अधिक है और नदी के मार्ग से इधर उधर भेजा जाता है। कान्सू प्रान्त तक ह्वांगहो की तातुंग और दूसरी सहायक नदियां पहाड़ी धारायें हैं और नानशान या मीनशान की पिघली हुई बरफ़ के पानी को बहा लाती हैं। वीहो सहायक नदी इस भाग में प्रधान ह्वांगहो से भी अधिक उपयोगी है।

उत्तरी ऊँचे भाग का मध्यवर्त्ती प्रदेश

इस प्रदेश में शान्सी (पर्वत के पश्चिम का का प्रान्त) प्रान्त का बड़ा भाग और चिली प्रान्त का उत्तरी भाग शामिल है। इस प्रदेश में लोयस के (पीली मिट्टी से ढके हुए लम्बे टीले शामिल हैं) पठार की ऊंचाई २५०० फुट से ५००० फुट तक है। दक्षिण और पश्चिम की ओर ह्वांगहो नदी की घाटी है। शेष ओर ऊंचे पर्वत हैं। इस प्रदेश में कहीं कोयले की तहें और कहीं चूने के पत्थर की चट्टानें हैं। ऊपर से लोयस मिट्टी बिछी हुई है। जंगलों के कट जाने से यहां पहाड़ गहरे खड्ड हो गये हैं। इनके ढाल नंगे और वीरान हैं। दक्षिणी शान्सी में पहाड़ों का रुख कुछ उत्तर की ओर है और उत्तर की ओर वे पूर्व की ओर मुड़ गये हैं। इधर का सारा प्रदेश नंगा और पीली धूल से भरा हुआ है। हवा भी साफ नहीं मालूम होती है। नदियाँ कुछ भीतर की ओर और कुछ बाहर की ओर बहती है। ह्वांग हो की प्रधान सहायक इस प्रदेश में फेनहो नदी है। कुछ नदियां पीहो नदी में मिलती हैं। ह्वांग हो की दूसरी सहायक नदी मीन है इसी के किनारे शान्सी प्रान्त की राजधानी तैयुआन है। इधर की जमीन बड़ी उपजाऊ है। सिंचाई हो जाने से बड़ी अच्छी फसलें होती हैं। लेकिन यहां की जलवायु बड़ी विकराल है। इससे यहाँ के मजबूत किसान कड़ी मेहनत के बाद किसी तरह एक फसल उगाकर अपनी गुज़र कर पाते हैं। रेलवे के निकल जाने से इधर के छोटे छोटे नगर भी प्रसिद्ध हो गये हैं। कल्हा (जहाँ पहले मंगोलिया का प्रधान लामा रहता था) में मंगोल ग्वाल और ऊंट के रस्से बेचने लाते हैं। तातुंग में कोयला और सोडा की खाने हैं। काल्गन में कफिला मार्गों का मेल होता है। प्रधान मार्ग यहाँ से उर्गा को जाता है। शान्सी प्रान्त के प्रधान नगर रेल के पास पिंगतिंग खनिज और व्यापार का केन्द्र है। पिंगयाओ से होनान का प्रान्त को सामान जाता है। जेहोल नगर में प्राचीन समय में सम्राट शिकार के लिये जाया करता था।

उत्तरी ऊँचे भाग का पूर्वी प्रदेश

इस प्रदेश में मंचूरिया का बड़ा भाग शामिल है। इसी में फेंगटियन (शेंकिंग) किरीन और हेलुंग क्यांग (अमूर नदी का प्रान्त, चीनी लोग अमूर नदी को हेलुंग क्यांग या काले साँप की धारा कहते हैं)। शानटंग (पहाड़ के पूर्व का प्रान्त) के पहाड़ी भाग को पिचली की खाड़ी ने मंचूरिया से और ह्वांग हो की घाटी ने शान्सी से अलग कर दिया है। फिर भी वे दोनों एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। मंचूरिया में मैदान और पहाड़ दोनों ही हैं। मंचूरिया में पश्चिम की ओर वाले पहाड़ खिंगन पर्वत के अंग हैं इनकी औसत ऊंचाई ४००० फुट है। चोटियाँ ५५०० फुट तक ऊँची हैं। मंगोलिया को ओर वाला ढाल क्रमशः है। पूर्व के मैदान की ओर ढाल एक दम सपाट है। उत्तर की ओर अधिक आगे याबलोनाई पर्वत हैं। खिंगन और याबलोनाई के बीच में अमूर नदी की घाटी है। खिंगन के उत्तरी भाग का पानी अमूर

नदी में और दक्षिणी भाग का पानी अमूर की सहायक सुंगारी नदी में जा गिरता है। २७०० फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों में पेड़ मिलते हैं। मंचूरिया में खेती के लिये बड़ी अच्छी जमीन है। यहाँ कोयला, लोहा, सोना और दूसरे खनिज पदार्थों की भी अधिकता है। उत्तरी मञ्चूरिया का मैदान सुंगारी (दूधिया नदी) और उसकी सहायक नोनी नदी का अंग है। सुंगारी नदी में किरीन तक और नोनी में शिशिहर तक नावें चल सकती हैं। मञ्चूरिया के दक्षिणी मैदान में ल्याओहो और याहलुहक्यांग नदियाँ हैं। उत्तरी और दक्षिणी मैदान के बीच में वृक्ष रहित प्रेरी मैदान हैं, यहाँ चीनी लोग तेजी के साथ बढ़ रहे हैं। पहले वे बड़ी दीवार को पार करने में हिचकिचाते थे। नदियों द्वारा लाई हुई बारीक आग्नेय चट्टानों की उपजाऊ मिट्टी ने इस मैदान को बनाया है। उपजाऊ मैदान के बीच में मुकडन नगर की स्थिति रेलों के मिलने के लिये बड़ी केन्द्रवर्त्ती है। चीनी लोग मुकडन को फेंगटियन कहते हैं। वह ऊँची चारदीवारी से घिरा है। दरवाजे रात के बारह बजे बन्द हो जाते हैं और सवेरे पांच बजे खुलते हैं। दीवारों का घेरा लगभग पांच मील है। जापानी और दूसरे विदेशी लोग दीवार के बाहर नये भाग में बसे हुए हैं।

चीन का बड़ा मैदान

चीन का बड़ा मैदान चिली, शांटंग, होनान, क्यांग्सू, आनह्व और हूपे प्रान्तों में शामिल है। इन प्रान्तों में मैदान के अतिरिक्त दूसरे प्रदेश भी शामिल हैं। लेकिन अधिकता प्रायः मैदान की ही है। चीन का यह बड़ा मैदान दो भागों में बाँटा जा सकता है। इसके उत्तरी भाग में ह्वांग हो नदी और दक्षिणी भाग में यांग्जी नदी बहती है।

मैदान का उत्तरी भाग हवा के साथ लाई हुई लोयस और पानी के साथ बह कर आई हुई काँप मिट्टी से बना है। बहुत दूर तक यह मैदान समतल मालूम होता है। नदियों के पानी को रोकने के लिये जगह जगह पर जो बाँध बने हैं वे ही कुछ ऊँचे हैं। चीनी विद्वानों ने नदी की तली को गहरा रखने का बार बार आदेश दिया। लेकिन यहां के लोग नदी की तली को गहरा करना भूल गये। उल्टे उन्होंने बाँध को ऊँचा कर दिया है। कहा जाता है अब से ४००० वर्ष पहले चीन के प्रसिद्ध सम्राट यू ने ९ वर्ष नदी को गहरा करने में लगाये। लेकिन उसे सफलता न मिली। फिर आगे चलकर पड़ोस की पहाड़ियों और पठारों से घिस कर इतनी अधिक मिट्टी आने लगी कि नदी के पानी को बांधों के भीतर रोक रखना असम्भव हो गया। बार बार बाढ़ आने से गढ़े सब कहीं मिट्टी से भर गये इसलिये पीछे से पानी को फैलने का अवसर मिल गया। पिछली बार की बाढ़ों में मैदान एक बड़ा भीतरी समुद्र सा बन जाने लगा। ह्वाँगहो की बाढ़ में असंख्य पशु, मनुष्य मर जाते हैं। बाढ़ के बाद नदी अपने पुराने मार्ग पर नहीं लौट पाती है। शांटंग की पहाड़ियों ने नदी का रुख अक्सर बदल दिया। कभी वह पीले सागर में और कभी वह पिचली की खाड़ी में गिरने लगी। लगभग ४०० मील चौड़े मार्ग में नदी कभी कहीं और कभी कहीं बहती रहती है। लेकिन बाढ़ के बाद नदी बहुत उपजाऊ मिट्टी छोड़ जाती है। बाढ़ में यह मैदान एक समुद्र सा मालूम होता है। फसल के दिनों में यह हरा भरा हो जाता है। और दिनों में यह भूरा और वीरान मालूम पड़ता है।

ह्वाँगहो का खुश्क और ठंडा मैदान यांग्जी के गरम और तर मैदान से एकदम भिन्न है। बनावट दोनों की एक सी है, लेकिन जलवायु का अन्तर होने से दोनों की उपज में भारी भेद हो गया है। ह्वाँगहो के मैदान में गेहूँ की फसल प्रधान है। दक्षिणी मैदान में गेहूँ की जगह धान पैदा होता है। यहाँ बैल की अपेक्षा भैंस से अधिक काम लिया जाता है। यह मैदान बड़ा घना बसा हुआ है। जहाँ होनाम, शांटंग और चिली के प्रान्त मिलते हैं वहाँ आबादी और भी अधिक घनी है। यांग्जी का डेल्टा अत्यन्त घना बसा हुआ है।

उत्तरी मैदान में ह्वाँगहो के अतिरिक्त और कई नदियाँ हैं। ल्वानहो मंचूरिया का पानी बहा लाती है। पीहो नदी चिली प्रान्त की प्रधान नदी है। ह्वेहो नदी बीच के जल विभाजक का पानी बहा लाती है। इसमें भी भयानक बाढ़ आती है। पहले यह

ह्वाँगहो नदी में मिलती थी। १८५२ से यह क्यांगसू प्रान्त की हुगजे झील में अलग गिरने लगी है।

शाही नहर (ग्रांड केनाल) चीन के मैदान में विशेष उल्लेखनीय है। यह नहर चेक्यांग प्रान्त के हाँगचाओ नगर से चिली प्रान्त के टियन्टसिन नगर तक जाती है। इसका सब से पुराना भाग शाही नहर के नाम से प्रसिद्ध है। यह अब से ढाई हजार वर्ष पहले बना था।

इस मैदान में शहरों की संख्या अधिक है। वे प्रायः सभी पुराने हैं। पेकिंग शहर उत्तरी सिरे पर है। शांटांग में ताईशान के उत्तरी ढालों पर सीनान शहर स्थित है। सीनान और पेकिंग के बीच में चिली प्रान्त की राजधानी चाओतिंग शहर है। टियन्टसिन शहर नया है। टियन्टसिन और ताकू मिलकर पीहो नदी के मुहाने पर पेकिंग का बन्दरगाह बनाते हैं।

मैदान के मध्य में पेकिंग शहर है। यह कई बार चीन की राजधानी रह चुका है। वर्तमान चीन के लिये यांग्ज़ी घाटी के शहर अधिक महत्व के हैं। ह्वाँगहो में नावें केवल कहीं कहीं (सो भी कठिनता से) चल सकती हैं। यांग्ज़ी में मुहाने (शंघाई) से १००० मील दूर इचाँग तक नावें चलती हैं। हांकाओ तक समुद्री जहाज़ चलते हैं। नानकिंग (दक्षिणी राजधानी) को छोड़ कर प्रायः सभी शहर बाहरी व्यापार के कारण बढ़ गये हैं। शंघाई इन सब में बड़ा है। इस प्रकार मैदान के उत्तरी भाग का ऐतिहासिक महत्व बड़ा है। दक्षिणी भाग का व्यापार और वर्तमान राजनैतिक महत्व अधिक है।

दक्षिणी पर्वतीय प्रदेश का पश्चिमी भाग इस प्रदेश के पहाड़ क्विनलुन पर्वत के सिलसिले हैं और पामीर से आरम्भ होकर जापान तक फैले हुए हैं। पश्चिम की ओर इन्हें सिनलिंग पर्वत कहते हैं। पूर्व में उन्हें फ़ून्यू कहते हैं। वे पश्चिम से पूर्व को चले गये हैं। अन्त में वे कुछ दक्षिण की ओर मुड़ गये हैं। वे ह्वांग हो और यांग्ज़ी के बीच में जल विभाजक बनाते हैं और उत्तरी चीन से दक्षिणी चीन को जाने वाले मार्गों को दुर्गम कर देते हैं। इन पर्वतों में दो ही अच्छे दर्रे हैं। एक दर्रा सिनलिंग को फ़ून्यू शान (पर्वत) से अलग करता है। अधिक पश्चिमी दर्रा अधिक दुर्गम है। इस दर्रे में होकर वी घाटी से हान घाटी को मार्ग गया है।

इस दक्षिणी पर्वतीय प्रदेश में वेगवती नदियाँ, सपाट पहाड़ियाँ और घने वन हैं। इसके उत्तरी ढाल अधिक सपाट हैं। दक्षिण की ओर ढाल क्रमशः है और हानहो की घाटी में मिल गया है। अधिक पूर्व की ओर वन कम हो गया है। फ़ून्यू शान में सिन्दूर के छोटे छोटे पेड़ हैं। इन की पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खिलाई जाती हैं।

पश्चिमी सेच्वान पठार के पूर्व का प्रदेश—पश्चिमी सेच्वान और यूनन के पूर्व में पुरानी घाटियाँ और नदीय धारायें हैं। सिनलिंग के दक्षिण में हान हो की तंग घाटी है जो दक्षिण में तापाशान पर्वत से घिरी हुई है। तापाशान के दक्षिण में सेच्वान का लाल बेसिन है। यहाँ मध्यकालीन (मेसोज़ोइक युग का) लाल बलुआ पत्थर है। इसके घिसने से जो मिट्टी बनी है वह बड़ी उपजाऊ है। मार्को पोलो ने यहाँ के चेंग्टू (सिन्दफ़ू) शहर की बड़ी प्रशंसा की है। सीन नदी इधर की ज़मीन को भी सींचती है और यहाँ के शहर को यांग्ज़ी घाटी से मिलाती है। यह मैदान ९० मील लम्बा और ७० मील चौड़ा है। यहाँ धान गेहूँ मकई तम्बाकू और चाय खूब होती है। शहतूत के पेड़ों की अधिकता से रेशम बहुत तैयार होता है। इसके पूर्व में नानलिंग पर्वत है। नानलिंग पर्वत इस प्रदेश को यांग्ज़ी घाटी से अलग करता है। यहाँ मीलिंग प्रधान दर्रा है। यांग्ज़ी और सीक्यांग के बीच में पहाड़ी रुकावट है। यांग्ज़ी चीन देश में अत्यन्त उपयोगी जलमार्ग बनाती है। सीक्यांग का डेल्टा प्रसिद्ध है। यांग्ज़ी की लम्बाई लगभग २९०० मील है। पठार के सिरे (पिनशान) से समुद्र तट तक नदी की लम्बाई लगभग १७५० मील है। चीनी नावें पिनशान से ५० मील नीचे सूईफ़ू तक आती हैं। चुंगकिंग और इचांग के बीच में धुआँकश नावें (स्टीमर) चलती हैं। नदी के निचले भाग में कई झीलें हैं। पहले झीलों की संख्या और भी अधिक थी। यह झीलें नदी की बाढ़ को रोक लेती हैं। लेकिन नदी अपने साथ लाई हुई मिट्टी डाल डाल कर झीलों को भरती जा रही है। फिर भी नदी की धारा बहुत तेज़ है।
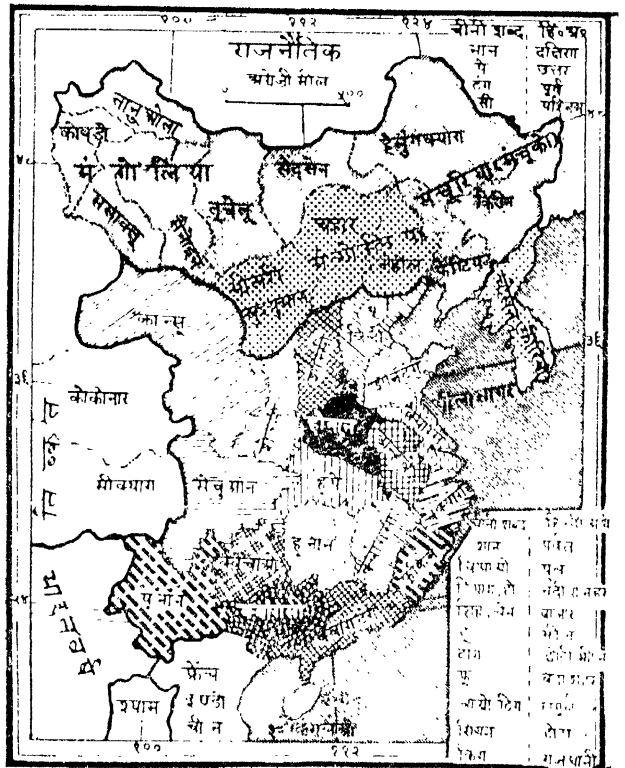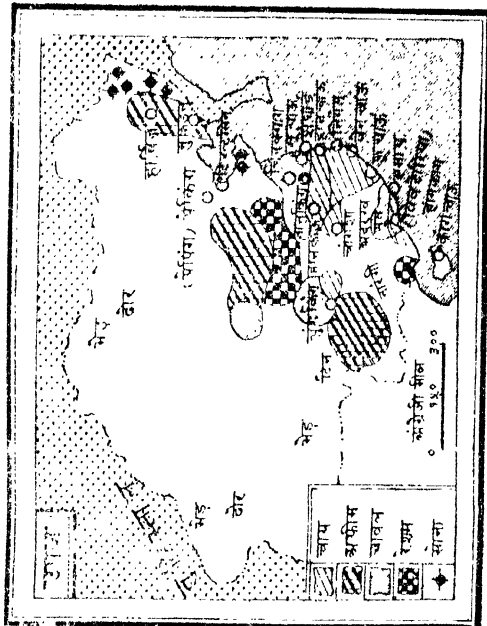
यांगजी के ऊपरी भाग में बाईं ओर से मीन क्यांग और कालिंग क्यांग नदियाँ मिलती हैं। दाहिने किनारे पर होक्यांग और वूक्यांग मिलती हैं। निचले भाग में हानक्यांग, युआन क्यांग, स्यांग क्यांग, और कानक्यांग नदियाँ यांगजी में आकर मिलती हैं। रेडबेसिन में चेंगटू के अतिरिक्त चुंगकिंग प्रधान व्यापारिक नगर है।

क्वेचाओ और समीप वर्त्ती प्रदेश

क्वेचाओ प्रान्त का ५/६ भाग पहाड़ी है। मार्ग अत्यन्त दुर्गम हैं। क्वेचाओ का अर्थ है मूल्यवान जिला। यहां खनिज पदार्थों की अधिकता है लेकिन अच्छे मार्गों के अभाव से यहां के खनिज और पहाड़ों के लकड़ी का पूरा उपयोग नहीं हो सका है। झीलों के उत्तर का प्रान्त हूपे और दक्षिण का प्रान्त हूनान है।

हूनान के नीचे यांगजी के दक्षिणी किनारे पर क्यांग्सी प्रान्त स्थित है। इस प्रान्त की प्रधान नदी कानक्यांग है जो कई धाराओं में बँट कर पोयांग झील में गिरती है। यह झील लगभग ९० मील लम्बी और २० मील चौड़ी है। कानक्यांग नदी बहुत तेज बहती है। फिर भी कानचाओ नगर तक इसमें नावें चल सकती हैं। इस प्रान्त की नई पहाड़ियां वन से ढकी हैं। फिर भी यहाँ लकड़ी की कमी है और पश्चिमी प्रान्तों से बहुत सी लकड़ी मँगानी पड़ती है।

आन्हे, क्यांग्सू और चेक्यांग प्रान्त यांगजी के डेल्टा में स्थिति हैं। इस के उत्तर में होआन हांग हो के पानी को अलग करता है। यही किनलुन का अन्तिम सिरा है। यह डेल्टा अत्यन्त घन बसा है। आने जाने के मार्ग भी चीन भर में अच्छे हैं। इस डेल्टा का कारबारी और व्यापारिक केन्द्र शंघाई है। धान, रेशम और कपास यहां की प्रधान उपज हैं। लेकिन चीनी लोग हांगचाओ और सूचाओ नगरों को उत्तम समझते हैं। एक चीनी कहावत है कि "ऊपर स्वर्ग और नीचे सूचाओ और हांगचाओ है"

दक्षिणी पूर्वी तटीय प्रदेश

चीन का समस्त समुद्र तट लगभग ४५०० मील लम्बा है। लेकिन दक्षिणी चेक्यांग और फूकेन का समुद्र तट भीतरी भाग से एक दम अलग पड़ गया है। इसके पश्चिम में ऊंची पर्वत श्रेणियां हैं। भीतर पहुँचने के मार्ग बड़े दुर्गम हैं। बहुत बड़े मार्ग में न तो सड़कें हैं न जल मार्ग की सुविधा है। पहाड़ों पर केवल पगडंडियां हैं। नदियां छोटी हैं। समतल मैदान बहुत ही कम है। मीन और हान-क्यांग कुछ बड़ी नदियां हैं। इन्होंने अपने पीछे की पहाड़ी जमीन को भी काट लिया है। क्युलुंग क्यांग (नदी) एमाय शहर के पास समुद्र में गिरती है। केवल इस नदी में कुछ दूर तक स्टीमर चल सकते हैं। जीने दार पहाड़ी ढालों पर जहां कहीं पानी मिल जाता है वहां धान की खेती होती है। धान के खेतों के ऊपर चाय के बगीचे हैं। तटीय प्रदेश में घनी आबादी है। अधिकतर लोग नावों पर घर बना कर रहते हैं। कुछ लोग पूर्वी डच द्वीप समूह में मजदूरी करने चले जाते हैं।

सी क्यांग बेसिन

यह बेसिन क्वेचाओ प्रान्त के दक्षिणी भाग और क्वांसी और क्वांटंग प्रान्तों में स्थित है। पश्चिमी भाग पहाड़ी है। पूर्वी में डेल्टा प्रदेश है। इधर का तट बहुत कटा फटा है। सीक्यांग नदी यूनन प्रान्त के पठार से निकलती है। समशुई के पास इसका डेल्टा आरम्भ होता है। इसकी उत्तरी शाखा केन्टन कहलाती है। चीन की दूसरी नदियों की तरह सीक्यांग भी अपने ऊपरी भाग में बहुत तेज बहती है। उसके लम्बे मार्ग में कई सहायक नदियाँ उसमें आ मिलती हैं। युहक्यांग नदी यूनन के पठार से निकलती है और वूचाओ से लगभग १०० मील की दूरी पर सीक्यांग में मिलती है। नानिंग से ऊपर सीक्यांग नदी मिलती है। ल्युक्यांग, क्वेक्यांग और तुंगक्यांग दूसरे किनारे पर मिलती हैं। इस प्रदेश का बहुत बड़ा भाग पहाड़ी है। उत्तर में नानलिंग पर्वत सीक्यांग और यांग्ज़ी के बीच में जल विभाजक बनाते हैं। पश्चिम का ओर यूनन पठार एक ऊँची छत की तरह उठा हुआ है। तट से कुछ अलग हांग कांग द्वीप ब्रिटिश अधिकार में है। हैनान द्वीप चीन के हाथ में है।

जल-वायु

चीन देश उत्तर से दक्षिण तक २५०० मील चौड़ा और पूर्व से पश्चिम तक ३००० मील लम्बा है। इस विशाल देश में कहीं नदियों के डेल्टा, कहीं ऊँचे पठार और कहीं अत्यन्त ऊँचे पहाड़ हैं। इसी से इस विशाल देश में कई प्रकार की जलवायु है।

हिन्दुस्तान की तरह चीन एक मानसूनी प्रदेश है। यहाँ मौसम मौसम में जल-वायु बदलती है। शीतकाल में मंगोलिया और तरीम बेसिन में हवा अत्यन्त ठंडी और भारी हो जाती है। इसलिये हवायें यहाँ से बाहर की ओर को चलती हैं। वे प्रायः उत्तर-पश्चिम की ओर से बड़े वेग से चलती हैं। धूल भी खुश्क और ठंडी होती है और समुद्र-तट को भी ठंडा कर देती हैं। उत्तरी चीन की बड़ी बड़ी नदियाँ जम जाती हैं। ३२ उत्तरी अक्षांश तक तापक्रम घट कर ३२ अंश फारेन हाइट हो जाता है जिससे पानी जम कर बरफ़ हो जाता है। शीतकाल में उत्तरी चीन खुश्क रहता है लेकिन दक्षिणी चीन में कुछ पानी बरस जाता है। ग्रीष्म ऋतु में रेगिस्तान और स्टेपी प्रदेश अत्यन्त गरम हो जाता है। गरम हवा फैलती है और हलकी हो जाती है। हवा का दबाव सब कहीं बहुत हल्का हो जाता है। समुद्र की अधिक भारी हवायें इस ओर खिंच आती हैं। वे अपने साथ बहुत सी भाप लाती हैं। गरमी में प्रायः सारे चीन में हवायें दक्षिण और पूर्व की ओर से आती हैं और सितम्बर महीने तक चलती रहती हैं। लेकिन चीन में गरमी की हवाओं में शीतकाल की हवाओं का सा वेग नहीं होता है। फिर भी दक्षिणी चीन में ४० इञ्च से ऊपर पानी बरसता है। उत्तरी भाग में पहुँच कर हवायें कुछ खुश्क हो जाती हैं। पेकिंग के पड़ोस में २५ इञ्च से अधिक वर्षा नहीं होती है। जुलाई महीने में सब से अधिक वर्षा होती है। वर्षा हर रोज़ नहीं होती है। एक दिन पानी बरसता है तो दो तीन दिन आस्मान साफ रहता है। अगस्त के महीने में मध्य चीन के तट पर प्रबल तूफान आते हैं जो जहाजों के लिये बड़े भयानक होते हैं।

जल-वायु के विचार से चीन के तीन प्रधान भाग हैं :—

१—उत्तरी चीन—यह भाग शीतकाल में अत्यन्त ठंडा और खुश्क रहता है। जनवरी में तापक्रम सब कहीं ३२° के नीचे गिर जाता है। स्थल की ओर से आने वाली आँधियाँ बड़े ज़ोर से चलती हैं और अपने साथ बहुत सी पीली मिट्टी उड़ा लाती हैं। ग्रीष्म ऋतु प्रायः दक्षिणी चीन के समान गरम हो जाता है। इसी ऋतु में पानी बरसता है। वर्षा सब कहीं ३० इञ्च से कम होती है।

२—मध्य चीन—यह भाग शीतकाल में बहुत ठंडा रहता है। समुद्र-तल पर प्रायः पानी नहीं जमने पाता है। वर्षा प्रायः ग्रीष्म ऋतु में होती है। चक्करदार हवायें कुछ पानी सरदी में भी बरसा जाती हैं।

३—दक्षिणी चीन—यह भाग गङ्गा की घाटी की तरह गरम और नम है। शीतकाल में कुछ जाड़ा पड़ता है। लेकिन जाड़ा इतना अधिक नहीं होता है कि फसल न उग सके। इसी से दक्षिणी चीन में साल में कई फसलें उगती हैं।

वनस्पति

उत्तरी और मध्य चीन के बहुत बड़े भाग में बन ऐसे नष्ट हो गये हैं कि सब कहीं वीरान और नंगी ज़मीन नज़र आती है। विकराल ठंड में तापने और भोजन बनाने के लिये ईंधन की सब कहीं कमी रहती है। मन्दिरों के पड़ोस को छोड़ कर और कहीं पेड़ नहीं रह पाते हैं।

नानशान, सिनलिंग पर्वतों और सेचुआन और यूनन के पठारों पर काफी घना जंगल है। ऊँचे भागों में ठंड सहने वाले देवदारु और दूसरे पेड़ हैं। दक्षिणी भाग में उष्ण कटिबन्ध के वन हैं। हैनान द्वीप और दक्षिणी-पूर्वी तट पर कपूर के पेड़ बड़े उपयोगी हैं। बाँस कई भागों में मिलता है।

कृषि

भारतवर्ष की तरह चीन भी कृषि प्रधान देश है। प्रधान चीन और भारतवर्ष का क्षेत्रफल प्रायः बराबर है। लेकिन चीन में पहाड़ी भूमि अधिक है। इसलिये

खेती के योग्य उपजाऊ भूमि कुछ कम बची है। अच्छी भूमि का कुछ भाग कब्रों ने घेर रक्खा है। चीनी लोग अपने पूर्वजों को बहुत मानते हैं वे स्वयं कितना ही कष्ट सह लेंगे, अपने जानवरों को भी कठिनाई से रख लेंगे लेकिन वे अपने पूर्वजों की कब्रों को कभी न छेड़ेंगे। इसीलिये घाटियों में बड़ी घनी आबादी है, कहीं कहीं तो एक वर्ग मील में ३००० मनुष्य और १००० पशु किसी तरह गुजर करते हैं।

चीन की प्रधान फसल धान, गेहूँ, और ज्वार बाजरा है। धान दक्षिणी और मध्य चीन की कछारी चिकनी मिट्टी में अधिक होता है। चीन की समस्त कृषिभूमि का लगभग ३० फीसदी भाग धान में लगा हुआ है। दक्षिणी भाग में अक्सर घाटी की गरम और तर भूमि में धान और ऊपर के पहाड़ी ढालों पर चाय के बगीचे हैं। खेतों और बगीचों के बीच में गांव बसे हैं। स्त्रियों और बच्चों की टोलियाँ सवेरे ही गांव से टोकरियाँ लेकर पहाड़ी ढालों पर चाय के मुलायम पत्ते तोड़ने आती हैं। दिन भर पत्ते तोड़कर वे शाम को इन्हें अपने घर ले जाती हैं। जब चाय की झाड़ियाँ तीन वर्ष की हो जाती हैं तब उन के मुलायम पत्ते तोड़े जाते हैं। पत्ते साल में तीन बार अप्रैल, जून और अगस्त में तोड़े जाते हैं। आखिरी बार की पत्तियाँ इतनी अच्छी नहीं होती हैं। इस तरह चाय को झाड़ी आठ दस वर्ष तक पत्ती देती रहती है। चाय तैयार करने के चीन में कुछ कारखाने हैं। लेकिन अधिकतर चाय अलग अलग घरों में तैयार की जाती है। यांगज़ी नदी के पड़ोस की पहाड़ियों पर सब से अधिक चाय मिलती है। इसी घाटी में धान के असंख्यों खेत हैं। पानी भीतर भरा रहे इसलिये धान के खेत की मेंड़ें कुछ ऊँची कर दी जाती हैं। दक्षिणी चीन और दक्षिणी पूर्वी तटीय प्रदेश में जितनी खेती का क्षेत्रफल है उसके $\frac{3}{4}$ भाग में धान होता है। चावल ही यहाँ के लोगों का प्रधान भोजन है। यांग्ज़ी घाटी में कुछ चावल और कुछ गेहूँ होता है। उत्तरी चीन में जहाँ ३० इंच से कम पानी बरसता है वहाँ धान कम होता है। उसके स्थान में गेहूँ मिलता है। उत्तरी चीन के बड़े मैदान की उपजाऊ ज़मीन और खुश्क जलवायु गेहूँ की खेती के लिये बड़ी अनुकूल है। वीहो की घाटी और मंचूरिया में बहुत गेहूँ होता है। प्रतिवर्ष प्रायः डेढ़ करोड़ टन गेहूँ चीन में पैदा होता है।

जहाँ साल में ४० इंच से कम पानी बरसता है वहीं ज्वार बाजरा की खेती भी होती है। उत्तरी पूर्वी चीन और मंचूरिया में इसकी खेती अधिक होती है।

हाल में सोयाबीन की खेती भी बहुत बढ़ गई है। यह बहुत ही पुष्ट कारक भोजन होता है। मध्य चीन और उत्तरी चीन में कपास भी बहुत होती है। पोस्त (अफीम) की खेती पहले से बहुत घट गई है। उष्णार्द्र जलवायु में तम्बाकू भी बहुत होती है।

पशु-पालन

चीन के पालतू पशु

अर चीन का सब से प्रसिद्ध पालतू पशु है। इस पशु का प्रत्येक चीनी के जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह उन भागों में पाला जाता है जहाँ बौद्ध रहते हैं और उन भागों में नहीं पाला जाता है जहाँ मुसलमान रहते हैं। चीनियों में सुअर का मांस अच्छा भोजन समझा जाता है। यद्यपि यह पशु साधारणतया प्रत्येक स्थान में पाया जाता है परन्तु कुछ ऐसे स्थान चीन में हैं जहाँ विशेष कर इसका व्यापार होता है; जैसे, उत्तरी चीन में किरीन सूबे का मध्यवर्ती भाग और सिंगटाऊ के निकटस्थ प्रदेश, दक्षिणी हेनान द्वीप और क्वांगसी प्रदेश में ऊकाऊ तक के सामने का भाग। इस प्रकार जीवित और मरे हुए सुअरों का व्यापार किया जाता है। बेचारे जानवर टोकरियों में भर कर समुद्र-यात्रा के लिये रवाना किये जाते हैं।

यह समझना कठिन नहीं है कि सुअर चीनियों का अमूल्य धन क्यों माना जाता है। इस पशु के पालने में कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जो वस्तु मानवीय भोजन के लिये अति तुच्छ है सूअर के प्रयोग में आती है। सूअर बहुत से बच्चे (बहुधा अठारह) देते हैं। जब फसलें कट जाती हैं, सुअर खेतों में छोड़ दिये जाते हैं और फिर बचे खुचे गिरे हुए अनाज के दानों को खाकर मोटे होते हैं। वसन्त ऋतु में सुअरों को कन्द के खेतों में घूमने और खाने की आज्ञा मिल जाती है। इसके दो कारण हैं। प्रथम, कंद खाकर सुअर मोटे पड़ें ताकि अच्छा दाम मिले और दूसरे, चीनी सुअर के मांस का' कंद से अच्छा भोजन समझते हैं।

यद्यपि लगभग २५,००० घोड़े प्रति वर्ष बाहर से चीन में मँगाये जाते हैं, तिस पर भी यह पशु चीनियों में पालतू नहीं है। घोड़ा चीन के प्रत्येक स्थान में पाया जाता है। परन्तु दक्षिणी चीन में, क़स्बों में और युद्ध के कामों को छोड़ कर, इसका विशेष प्रयोग नहीं किया जाता है। उत्तरी चीन में घोड़ा कृषि सम्बन्धी कार्यों में आशा से कम प्रयोग किया जाता है। निस्सन्देह, इसका यह कारण है कि इस काम के लिये अच्छे घोड़े नहीं मिलते। चीन में कई नस्ल के घोड़े हैं जिनमें, उन नस्लों को छोड़ कर 'जो हाल ही में बाहर से लाये गये हैं, मंगोल और जेक्वान टट्टू (Szechwan) अति पसिद्ध हैं। मंगोल टट्टू बहुत मजबूत होता है और अच्छी चरागाहों में चरना पसन्द करता है। यदि अच्छे सवार इसका प्रयोग करें और इसको उचित विश्राम दें तो यह काफ़ी दूर तक सवारी के काम में लाया जा सकता है। यह पशु दक्षिणी चीन की गर्म जलवायु भली भाँति सहन कर सकता है। इसमें बहुत कम सन्देह है कि यह टट्टू प्रेज्वालस्की (Prjewalski's) के घोड़े की नस्ल और कई और नस्लों से मिल कर बना है। जेक्वान टट्टू मंगोल टट्टू से हलका और शानदार जानवर होता है। इसकी नस्ल के विषय में सन्देह है।

भारी शरीर होने के कारण काठी से लदा हुआ मंगोल टट्टू किसी काम में नहीं लाया जा सकता। अतएव यह सवारी के काम आता है। चीनी सरपट दौड़ने वाले जानवरों का अधिक मान करते हैं। यह

कहा जाता है कि नर घोड़ों में सरपट दौड़ने की आदत परम्परा से चली आती है। पर यह बात मादा पशुओं में नहीं पाई जाती है। स्वाभाविक सरपट जाने वाले घोड़ों का दाम सिखाये हुओं से अधिक मिलता है। चीनी घोड़ों से खच्चर पैदा करते हैं और कभी कभी गधों को मंगोल टट्टुओं के खरके में छोड़ देते हैं ताकि ये घोड़ी से बच्चे पैदा करें। खच्चरों का सब से बड़ा बाजार, जहाँ से ये पशु समस्त चीन में भेजे जाते हैं, पश्चिमी शान्टंग में है। घोड़े की तरह खच्चर बहुधा सवारी के काम में लाया है। परन्तु लम्बे पैर होने के कारण गाड़ी खींचने के काम में भी लाया जाता है। उत्तरी चीन में ऐसी गाड़ियाँ जिनमें एक से चार तक खच्चर जुते रहते हैं, बहुधा इस्तेमाल की जाती हैं। खच्चर कभी कभी टट्टू या गधे के साथ भी जोता जाता है।

गधा समस्त उत्तरी चीन में प्रयोग किया जाता है। खच्चर के साथ जोते जाने के अतिरिक्त, यह पशु बहुधा बोझा ढोने के काम आता है। ये छोटे छोटे और मजबूत जानवर कोयला से लेकर खाने की वस्तुएँ तक ढोते हैं और सवारी के काम तथा हल और गाड़ियाँ खींचने के काम भी आते हैं।

बैल चीन में खेती करने के काम आता है। यह चीन के प्रजातन्त्र-प्रदेश के अधिकतर भागों में पाया जाता है। ऊपरी प्रदेश में कृषक इसको पालते हैं। उत्तरी सूबों के बाहर जल के भैंसे (Water-buffalse) इसका काम देते हैं। सर्वत्र गाय बैल मांस और दूध देने के काम आते हैं। चीन के मुसलमान गाय के मांस का तो प्रयोग करते हैं परन्तु दूध का कभी नहीं। बैल चीन का मुख्य पशु है। यह वह सब काम करता है जो मनुष्य से नहीं हो सकता। बैल उत्तरी चीन की भारी से भारी गाड़ियाँ खींचता है, हल जोतता है और उस पहिये को घुमाता है जो फारस में पनचक्की उठाने के काम आता है।

चीनी अपने पशुओं पर आवश्यकता से कम ध्यान देते हैं। उत्तर में ये पशु पशुशाला में बुरी तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पशुशाला में छप्पर तक नहीं होती है। प्रातःकाल और सायंकाल पशु सड़कों के किनारे और क़ब्रिस्तान के समीपवर्ती प्रदेशों की घास चर कर अपना पेट भरते हैं और इस भोजन पर रह कर भारी से भारी काम करते हैं। चीन के पशु बीमारियों से दूर रहते हैं।

दक्षिण में पानी के भैंसे बैल का काम करते हैं। यह पशु बैल से मजबूत होता है और दलदल में काम कर सकता है। अतः बैल सूखे खेतों में हल चलाता है और भैंसे दलदली भागों में हल चलाते हैं। यह पशु बिना पानी के नहीं जीवित रह सकता। मध्य या दक्षिणी चीन के किसी गाँव के बाहर वह तालाब बहुत अच्छा लगता है जहाँ ये भैंसे दिन में काम करके जाते हैं, पानी में डुबकी लगाते हैं और जुगाली करते हैं। इस तालाब के अतिरिक्त इन भैंसों का कोई विशेष ख्याल नहीं किया जाता है। लड़के सड़कों के किनारे इन्हें चराते हैं। परन्तु दक्षिणी चीन में खूब चरागाह होने के कारण इन भैंसों को बैलों से अधिक खाने को मिल जाता है।

यद्यपि याक पश्चिमी चीन में प्रयोग किया जाता है, तो भी तिब्बत की सभ्यता के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह उन्हीं भागों में पाया जाता है जहाँ का जलवायु इसके अनुकूल है। ऊँट उत्तरी चीन का मुख्य पशु होते हुए भी मंगोल सभ्यता से अधिक सम्बन्ध रखता है। कदाचित् पेकिंग से कालगन और टाटंग (Tatung) तक का रेल ने ऊँट के प्रयोग को बन्द किया है। प्राचीन काल में कारवाँ पेकिंग में इकट्ठा होता था। अब व्यापारियों के एकत्रित होने का स्थान कालगन हो गया है। कालगन में लाकर ऊँटहारे अपने पशुओं को दक्षिण की पथरीली जमीन में कष्ट नहीं देना चाहते। दक्षिण में रेल बन्द हो जाने से ऊँट अधिक बढ़ गये हैं।

भेड़ और बकरियाँ चीन के अधिकांश भागों में पाई जाती हैं और विशेषतः उत्तरी प्रदेश के पहाड़ी भागों और कुछ तटस्थ प्रदेश के पड़ोस में पाई जाती हैं। यद्यपि प्रोफेसर शूटहिल का कथन है कि भेड़ें (यांग्जी) के दक्षिण में (उन भागों को छोड़ कर जहाँ बाहर से लाई गई हैं) नहीं पाई जाती हैं, परन्तु आज दक्षिणी चीन में इनकी बहुतायत है। यद्यपि दक्षिणी चीनी भेड़ों का माँस नहीं पसंद करते परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि भेड़ों का उत्तरी चीन की प्राचीन सभ्यता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ला फ्ल्यूर (La Fleur) और फोस्कू (Foscue) के अनुमानानुसार १९१८ ई० में चीन में कुल बाईस लाख भेड़े थीं। उत्तर की मुसलमान जातियों और मंगोलों के जीवन के साथ भेड़ों का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है और कुछ भागों में इनका माँस अच्छा भोजन समझा जाता है।

कुत्ता अधिकांश चीन में पाया जाता है। वह चौकसी करता है और सड़कें भी साफ करता है। यद्यपि सुअर सब कुछ खाने के लिये प्रसिद्ध हैं परन्तु कुत्ते इस बात में इनसे भी बाजी मार ले गए हैं।

इन पशुओं से यह प्रकट हो जाता है कि उत्तरी और दक्षिणी चीन की सभ्यता में कितना बड़ा अन्तर है। ऊसर में रहने वाले पशु जैसे ऊँट, घोड़े, गधे, भेड़ और बकरियाँ उत्तरी चीन के पशु हैं और ऊँट को छोड़ कर सब के सब अधिकांश चीन में बढ़ गए हैं। सुअर जो जंगली पशु है सर्वत्र पाया जाता है। उत्तरी और दक्षिणी चीन के बैलों में अच्छा अन्तर है। सुअर और पानी के भैंसों को छोड़ कर जो दक्षिण के पशु हैं, और सब पालतू पशु बाहर से दक्षिणी चीन में लाए गए हैं और अब भी उत्तरी चीन की सभ्यता का इतना बड़ा प्रभाव पड़ते हुए भी पशु अच्छी तरह दक्षिणी चीन में नहीं बढ़ पाए हैं।

मुर्गियाँ इत्यादि पालना

चीन में मुर्गियाँ पालने का पेशा पुराना है और अब सर्वत्र फैल गया है। चीनी मुर्गियाँ, बतक और हंस पालते हैं। ये सब के सब पक्षी चीन में लोक प्रिय हो गए हैं। पेपिंग के बतक को छोड़ कर और भांति के बतक अधिकतर दक्षिणी चीन के दलदली रास्तों में पाए जाते हैं। चीनी वैज्ञानिक रीति से और उत्साहपूर्वक पक्षी नहीं पालते। इन्हें इधर उधर दौड़ने की आज्ञा मिल जाती है, यद्यपि समया नुसार इनके पैर भी बँधे रहते हैं। कभी कभी चीन के छोटे लड़के बतक को गाँव के उस भाग में ले जाते हैं। जहाँ इस पक्षी को काफी भोजन मिल जाता है। सर्वत्र अंडों का भोजन में अधिक मान है। उत्तर में मुर्गी के अँडे और दक्षिण में बतक के अँडे पसंद किए जाते हैं। अँडे बहुत बड़ी संख्या में यांग्जी के बंदरों से बाहर भेजे जाते हैं। चीनी बहुत दिन तक रक्खे हुए अँडे बहुत चाहते हैं। अतः इनको या तो चूने में या गाड़ कर रखते हैं। स्वभाव पड़ जाने ऐसे अँडे पर खाने में बहुत स्वदिष्ट लगते हैं।

चीन में कृत्रिम ढंग से अँडे सेने का वर्णन बहुत ही दिलचस्प है। आल सोल्स डे (All Soul's Day) के बाद जो अप्रैल के आरम्भ में पड़ता है, चीनी घर का एक भाग इस काम के लिए तै कर लिया जाता है और दहकती हुई अँगीठी तैयार की जाती है। जब अँडे मिलने का समय आता है, तब ताजे अँडों के आठ हिस्से जिनमें से प्रत्येक हिस्सा १३०० अंडों का होता है एकत्रित किया जाता है। प्रत्येक १३०० अँडों का समूह एक टोकरी में चार इंच मोटी गेहूँ की बालों की तह पर रक्खा जाता है और इन अँडों के ऊपर मुलायम तकियों की तीन तहें सावधानी से रखी जाती हैं। प्रत्येक दिन सवेरे और सायंकाल अँगीठी लकड़ियों से जलाई जाती है। प्रत्येक टोकरी से एक अँडा निकाल कर और हथेली या भौंहों में लगा कर चीनी ठीक गर्मी का अनुमान लगाते हैं। टोकरियों को इधर उधर हटाने से और अँडों को दिन में चार बार उलटने से गर्मी बराबर हो जाती है। छठे दिन अंडों को दरवाजे के एक सूराख के सामने रख कर चीनी देखते हैं कि अँडों का बढ़ना प्रारंभ हुआ या नहीं। सातवें दिन बहुत बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यदि सब जगह का तापक्रम समान न हुआ तो मुर्गी के अँधा हो जाने का डर रहता है। दसवें दिन अँडे फिर देखे जाते हैं और मरे हुए अँडे जो बहुत कम होते हैं हटा लिए जाते हैं। ये बढ़ते हुए अँडे अँगीठी की सब से ऊँची जगह पर, जहाँ गेहूँ की बालों का एक बिछौना बिछा रहता है, रख दिए जाते हैं। अँडों के ऊपर इस बार तकियों की एक ही परत रहती है। तब वे दिन में दो बार उलटे पलटे जाते हैं। इस बीच में खाली टोकरियाँ फिर ताजे अँडों से भर दी जाती हैं। सत्रहवें दिन अँडे अँगीठी में सब से नीची जगह कागज़ की एक पतली तह पर रखे जाते हैं और खुले हुए छोड़ दिए जाते हैं। बीसवें और बाईसवें दिन के बीच अँडों का सेना प्रारंभ हो जाता है। जून के प्रारंभ में जब गेहूँ की फसल आधी तैयार रहती है मुर्गियाँ

निकलने लगती हैं। बतक अठाईस दिन में और हंस बत्तीस दिन सेए जाते हैं। यद्यपि इस प्रयत्न के लिए आरम्भ में बहुत बड़े धन की आवश्यकता होती है, परन्तु सफलीभूत हो जाने पर बहुत बड़ा आर्थिक लाभ होता है। एक अँडे का मूल्य तीन पैसा और एक दिन की मुर्गी का मूल्य छः या सात पैसा होता है।

इन पालतू पक्षियों को रखने के साथ साथ चीनी कारमोरन्ट पक्षी का बहुत अच्छा प्रयोग करते हैं। यह पक्षी अधिकांश चीन में समुद्री तटों पर और भीतर की दलदली जमीनों पर जंगली दशा में पाया जाता है। चीन और जापान में, अधिकतर चीन में, यह पक्षी मछली मारने के काम आता है। यह पक्षी अब इतनी बड़ी संख्या में पाला जाता है कि चीनी विशेषकर चिहली प्रान्त के निवासी इसे पिंजड़े में पालते हैं और अब यह बहुत स्थानों में प्रांतीय बाजारों में मछली भेजने का बहुत बड़ा जरिया बन गया है। गले के चारों ओर एक छल्ला होने के कारण ये पक्षी मछली नहीं निगल सकते। बड़ी बड़ी नावों पर इनके लिए मचान बने रहते हैं। इन मचानों पर बैठा कर ये मछली पकड़ने के स्थान पर ले जाए जाते हैं। कभी कभी कारमोरन्ट छोटी नौकाओं पर या बाँस पर बैठा कर ले जाए जाते हैं। चीन में मछली मारने के अब दो तरीके हैं। मछवाहा कुछ कारमोरन्टों को समुद्र में फेंक देता है। जब ये पक्षी बड़ी बड़ी मछलियाँ पकड़ लेते हैं और जब इनके झोले छोटी मछलियों से भर जाते हैं तब ये नाव पर लौटते हैं। मछवाहा अपने जाल की सहायता से इन्हें ऊपर उठा लेता है, और फिर मछलियाँ ले कर इन्हें पानी में फेंक देता है। दूसरे तरीके के अनुसार कई नावें काम में लाई जाती हैं। छोटी छोटी नौकाओं पर मछवाहे और कारमोरन्ट रहते हैं और बड़ी बड़ी नौकाओं पर कुछ ऐसे आदमी रहते हैं जो चिल्लाते हैं और पानी पर बड़े बड़े बाँस पटकते हैं ताकि मछलियाँ ऊपर आकर चलने लगें। दिन भर के बाद कारमोरन्ट को उसका भाग दिया जाता है। कारमोरन्ट के पैरों में रस्सी बाँध कर लोग इन्हें मचानों पर रखते हैं और यदि इनका घर पानी से दूर हुआ तो ये बाँसों पर बैठा कर लाए जाते हैं। झील और नदियों के अलावा शांत तट की खाड़ियों में भी कारमोरन्ट का प्रयोग किया जाता है। इनके पर काट लिए जाते हैं ताकि फिर ये उड़ कर भाग न सकें।

कारबार
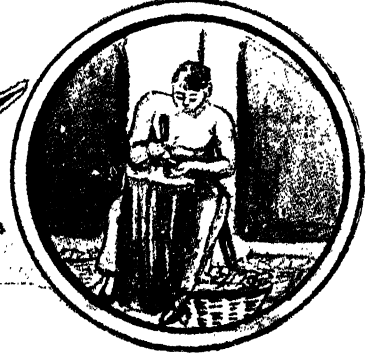
न के कारबार को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, कृषि और कल कारखाने। चीन के ७५ प्रतिशत लोग कृषि पर निर्वाह करते हैं। संसार के कृषि-प्रधान देशों में चीन का दूसरा नम्बर आता है, पहला रूस है, और तीसरा नम्बर भारतवर्ष का है।

कल कारखाने का कारबार भी भिन्न भिन्न विभागों में बँटा हुआ है। प्रायः स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कारबार भी रूप बदलता है। कहीं ईंट बनाने के कारखाने हैं, तो कहीं तेल, शराब, आटे की कलें। इसी प्रकार लकड़ी के कारखाने, सूती रेशमी तथा ऊनी कपड़ों के करघे आदि। कारीगरी के कारबार देश के भीतरी भागों में बहुतायत से पाये जाते हैं। फ़ीते काढ़ना, दरी कालीन तैयार करना, लकड़ी पर नक्काशी के काम, ये सब चीज़ें वहाँ के कलाकार बड़े सुचारु ढंग से करते हैं।

देहात के कारख़ानों में दो तरह के मज़दूर काम करते हैं, एक तो स्थायी दूसरे अस्थायी। कृषि-प्रधान प्रदेशों में अस्थायी ढंग के मज़दूर ज्यादा मिलते हैं, ताकि मौसम आने पर खेत में भी वे अपना काम कर सकें।

क्रमशः करघे और हाथ की मशीनों का चलन मिटता जा रहा है। फलस्वरूप देहात के लोगों में बेकारी और भूख का प्रश्न भी बढ़ता जा रहा है, चीन सरकार के सामने देहात के लोगों की जीविका का प्रश्न भी विकट रूप धारण किये हुए है। इस समस्या को हल करने की कोशिश में सामूहिक ढंग पर खेती करने की योजना की बात भी सोची गई। साम्यवादी इलाक़ों में तो इस ढंग पर खेती हो भी रही है। फिर भी अभी तक खेती करने वाले लोग ग़रीब काश्तकार ही ज्यादा हैं। भारत की तरह वहाँ भी मुनाफा खाने वाले अमीर ज़मींदार ज्यादा हैं, जिनके अधिकार में आधे से ज्यादा खेती की भूमि है। १९३३ के आँकड़े से पता चलता है कि क्वांगटंग प्रान्त की आबादी के २ प्रतिशत ज़मींदारों के हाथ में ५४ प्रतिशत खेती की भूमि है!

१९२८ के संसार व्यापी आर्थिक संकट (Economic Crisis) के समय बाहरी देशों से २० लाख चीनी मज़दूर बेकारी के कारण चीन में लौट आये। विशेषज्ञों का अन्दाज़ है कि कम से कम ६ करोड़ आदमी चीन में बेकार हैं, और कई लाख व्यक्ति ऐसे हैं जिनके पास भूमि नहीं कि वे खेती कर सकें, यद्यपि अमीर ज़मींदारों के हाथ में ज़मीनें अब भी जा रही हैं।

यूरोपियन तिजारत फैलने के पहले चीन के देहातों में रेशम और चीनी बर्तनों का काम खूब होता था। अब भी सूचो और नानकिंग का रेशम समस्त चीन में प्रतिष्ठा पाता है। रेशम का काम अब धीरे धीरे मशीनों की सहायता से होने लगा है।

चीनी बर्तनों के लिये कियांगसी प्रान्त मशहूर है। सन् १००० में सम्राट के इस्तेमाल के लिये बर्तन

तैयार करने के लिये यहाँ एक कारखाना खोला गया था! कहा जाता है इस कारखाने में उन दिनों १० लाख आदमी काम करते थे। टेपिंग विद्रोह में यह कारखाना विद्रोहियों ने नष्ट कर डाला। चीनी बर्तन के कारखाने अब आधुनिक ढंग पर खोले गये हैं, किन्तु पुराने ज़माने के बर्तनों की सी आब और रंग अब उन पर नहीं आता। लगभग ६ लाख पौण्ड के बर्तन बाहर भेजे जाते हैं।

कपड़े का काम कुछ दिनों पहले तक सर्वत्र करघों पर होता था। गाँवों की ग़रीब जनता करघे पर बुने हुए सस्ते कपड़े पहनती थी। किन्तु अब जैसा कि हमने बताया, मशीनों के प्रचार से करघे बन्द होते जा रहे हैं।

जहाँ तक चीन के कारखानों का सम्बन्ध है, वे प्रायः विदेशियों द्वारा ही सञ्चालित हो रहे हैं इन विदेशियों ने कोयला और लोहा आदि कच्चा माल विशेषाधिकार के रूप में ले रक्खा है। चीन का ख़ास कारबार कपड़े और लोहे का है। निम्नलिखित तालिका से हमें देखते हैं।

वर्ष	तकुओं की संख्या
१८९३	२०४, ७१२
१९१३	९८२, ८१२
१९२६	४,०६६, ७८०
१९३०	४,२२२, ९५६
१९३३	४,६११, ३५७

कि ४० साल के अन्दर किस तेजी से कपड़े का कारबार चीन में बढ़ा है। रुई अभी चीन के अन्दर पर्याप्त मात्रा में उगाई नहीं जाती, अतएव रुई बाहर से मँगानी पड़ती है। ४ मन वजन की २४ लाख गाठें प्रति वर्ष अमेरिका और हिन्दुस्तान से चीन में जाती हैं।

उत्तर चीन में कोयले की खानें बहुतायत से हैं। शांसी सूबे का ३० हज़ार वर्ग मील करीब करीब कोयले की खानों से भरा है लोगों का अनुमान है कि अकेले शांसी में इतना कोयला है कि वह सारे संसार की आवश्यकता हजारों वर्ष तक पूरा कर सकता है। ये कोयले की चट्टानें ४०, ४५ फ़ीट मोटी हैं। ये खानें अकसर पहाड़ियों में हैं, अतएव खान की खुदाई का काम भी बहुत सहल हो गया। कोयले की खान जापानियों और अंग्रेजों के हाथ में है। कोयले की उत्पत्ति का ३३ प्रतिशत चीन की पूंजी द्वारा होती है, ३० प्रतिशत जापानी पूंजी और ११ प्रतिशत अंग्रेजों की पूंजी द्वारा। कोयले वाले प्रान्त जेहोल, शान्सी, चहार, यूनन, हुनान, सिकांग है। १९३४ में २॥ लाख टन कोयला खानों से बाहर निकाला गया था। विशेषज्ञों का अन्दाज़ है कि चीन में कुल २॥ खरब टन कोयला खानों में है।

लोहा लियोनिंग और चहार प्रान्तों में मिलता है। वार्षिक निकासी लगभग २८ लाख टन की है। मंचूरिया में भी लोहे की खाने हैं। तांबे की खाने उत्तर चीन में हैं, पर वह गवर्नमेण्ट के अधिकार में हैं, ग़ैर सरकारी कम्पनियों को खान से ताँबा निकालने की इजाज़त नहीं है। 'टिन' भी चीन के मुख्य खनिज पदार्थों में से है। २० लाख पौण्ड की कीमत का टिन प्रति वर्ष बाहर जाता है। एन्टमनी, पारा, नमक आदि की भी तिजारत होती है। मिट्टी के तेल के सोते शान्सी, लियोनिंग, होपाई प्रान्तों में मिलते हैं। वार्षिक निकासी २४ करोड़ गैलन की है। इस तरह मिट्टी का तेल देश की जरूरत पूरी नहीं कर सकता। विदेशों से पेट्रोल, और मिट्टी का तेल मगाँना पड़ता है।

चीन के कारबार की उन्नति के रास्ते में अनेक रुकावटें है। गृह युद्ध, समर नायकों की नादिर शाही, जापानियों का निरीह जनता का शोषण करना, ये सभी बातें ऐसी हैं जो व्यापार की उन्नति नहीं होने देतीं। एक बात और है, जनता की गरीबी जब तक दूर नहीं होती, उनकी जेब में जब तक पैसा नहीं आता, तिजारत भी नहीं बढ़ सकती। जो कुछ थोड़ा बहुत कारबार है भी, वह जापानियों या अन्य विदेशियों के हाथ में है। चीन के प्रस्तुत व्यापारी और महाजन विदेशी कम्पनियों का माल चीन में बेचते हैं। एक प्रकार की दलाली का काम उन्हें करना होता है। मुनाफे की रक़म सब की सब विदेशियों की जेब में जाती है, फिर देश की तिजारत की उन्नति किस तरह हो? विदेशी साम्राज्यवाद फरेब और दगा से भरे हुए सन्धि पत्रों की आड़ में चीन के कच्चे माल

और चीन की सस्ती मजदूरी का प्रयोग अपने लाभ के लिये करता है। चीन का साम्यवादी दल इस भेद से पूर्णतया वाकिफ है। इसी कारण वह दल, निरन्तर साम्राज्यवाद और उसके एजेन्टों के खिलाफ आन्दोलन कर रहा है। यह दल चीन के शोषण को जड़ से मिटाना चाहता है। चीन की केन्द्रीय सरकार ने साम्यवादी दल के संग सहयोग कर बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। भारत की आर्थिक समस्या भी बहुत कुछ चीन जैसी ही है। साम्यवादी दल की सहायता से चीन जिस तरह अपनी आर्थिक पहेली को सुलझाने की कोशिश कर रहा है, भारत उसे बड़े ध्यान से देख रहा है, क्योंकि भारत भी उन्हीं साधनों का अवलम्ब लेकर अपने को वृटिश साम्राज्यवाद के पञ्जे से छुड़ाना चाहता है। चीन के इस पवित्र अनुष्ठान में भारत की आशा भी निहित है।

चीन के कारबार के विभिन्न दृश्य।

चीन में शिक्षा का प्रबन्ध

[लेखक—श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव एम० एस० सी०]

चीन में आधुनिक ढंग की शिक्षा का आरम्भ १९ वीं शताब्दी के मध्य से होता है। 'नानयंग मिडिल स्कूल' की स्थापना शंघाई नगर में १८९३ में हुई। १८९८ में सम्राट की ओर से फर्मान जारी हुआ कि आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर चीन के सभी प्रान्तों में प्राइमरी स्कूल खोले जाँय। परीक्षा की प्राचीन प्रणाली भी हटा दी गई। सहस्रों वर्ष पुरानी एकेडमी जो जगह जगह खुली हुई थीं, तोड़ दी गई और उनकी जगह कालेज और यूनिवर्सिटियाँ खोली गई। उनमें चीन की राष्ट्रीय भाषा और कला के अतिरिक्त पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा भी दी जाने लगी। स्कूल के करिक्युलम में धर्मशास्त्र, साहित्य, इतिहास, भूगोल, विदेशी भाषाएँ, गणित, जीवविज्ञान, पदार्थविज्ञान, भौतिकशास्त्र, ड्राइंग तथा व्यायाम भी शामिल हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि

वहाँ के स्कूल के दर्जों में ५० से अधिक लड़के भर्ती नहीं किये जाते और हर स्कूल में लड़कों की संख्या ८०० से अधिक नहीं रक्खी जा सकती। १९०२ के शाही फर्मान में ये बातें बिल्कुल स्पष्ट कर दी गई थीं। प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के लिये अध्यापकों की शिक्षा का भी प्रबन्ध इन्हीं दिनों किया गया। कई एक नार्मल स्कूल १९०३ में खोले गये। इन्हीं दिनों कारीगरी सिखाने के लिये भी स्कूल खोले गये। ये प्रायः तीन तरह के होते थे। कृषि शिक्षा के लिये, कल कारखानों की शिक्षा के लिये और तिजारत सिखाने के लिये। किन्तु १९०३ के शाही फर्मान में लड़कियों की शिक्षा का कोई आयोजन नहीं किया गया था। लड़कियों की अपर प्राइमरी शिक्षा का प्रबन्ध १९०३ में हुआ। इन स्कूलों में ४ वर्ष का कोर्स है।

१९१२ में चीन में जब प्रजातन्त्र की स्थापना हुई तो इस नवीन शिक्षा पद्धति का और भी विकास हुआ। प्रजातन्त्र ने इस बात पर जोर दिया कि मिडिल स्कूलों में लड़कों को अच्छे नागरिक होने की शिक्षा दी जाय। लड़के और लड़कियों की शिक्षा का अलग अलग प्रबन्ध हुआ। विदेशी भाषाओं में अँग्रेजी को सबके ऊपर स्थान मिला यद्यपि फ्रेन्च, जर्मन तथा रूसी भाषाओं के पढ़ाने का भी समुचित प्रबन्ध किया गया। लड़कियों के लिये उपरोक्त चीजों के अतिरिक्त सिलाई, बागवानी तथा गृह शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

तदुपरान्त शिक्षा प्रणाली बहुत कुछ इसी पद्धति के अनुसार चलती रही। १९२२ में पुनः चीन की शिक्षा प्रणाली में बहुत से सुधार हुये। शिक्षा के मुख्य उद्देशों में निम्नलिखित बातें शामिल की गईं:—

(१) समाज के लिये योग्य व्यक्ति बनाना।
(२) व्यक्तित्व का विकास।
(३) जन साधारण की शिक्षा में दिलचस्पी पैदा करना।
(४) राष्ट्रीय अर्थशास्त्र को समझाना।
(५) जनसाधारण के जीविकोपार्जन के तरीकों का अध्ययन करने में रुचि पैदा करना।
(६) निरक्षरता दूर करने के लिये प्रयत्न करना।

वर्तमान शिक्षा पद्धति

नेशनल गवर्नमेंट ने १९३२ में शिक्षा सम्बन्धी नये कानून बनाये, जिनके अनुसार मिडिल स्कूल, नार्मल स्कूल तथा टेक्निकल स्कूल सभी परिचालित होते हैं।

मिडिल स्कूलों में लड़कों को शिक्षा इस दृष्टिकोण से दी जाती है कि आगे चल कर वे विशेष योग्यता प्राप्त करने में समर्थ हो सकें। साथ ही साथ उन्हें अच्छे नागरिक होने की शिक्षा मिलती ही है। मिडिल स्कूल के दो भाग होते हैं। एक जूनियर और दूसरा सीनियर। जूनियर में प्राइमरी स्कूल से उत्तीर्ण लड़के भरती किये जाते हैं। जूनियर स्कूल के लड़कों की उम्र की अवधि १२ से १५ तक है, तथा सीनियर के लिये १५ से १८ तक। सीनियर स्कूल के विद्यार्थियों को फौजी शिक्षा भी दी जाती है—लड़कियों को फौज सम्बन्धी फर्स्ट-एड (प्रारम्भिक उपचार) की शिक्षा दी जाती है।

मिडिल स्कूल

सप्ताह भर में जूनियर स्कूल के विद्यार्थियों के लिये ३६ घण्टे स्कूल में और १२ घण्टे घर पर पढ़ना आवश्यक था तथा सीनियर स्कूल वालों को ३६ घण्टे स्कूल में और २४ घंटे घर पर पढ़ना जरूरी था। इस इन्तिजाम के कारण लड़कों को बहुत ज्यादा समय पुस्तकों के संग व्यतीत करना पड़ता था। अतएव पढ़ने के समय में कमी करने के लिये शिक्षा विभाग के मंत्री ने विशेषज्ञों की एक मीटिङ्ग बुलाई और उन लोगों से परामर्श कर के सीनियर तथा जूनियर दोनों स्कूलों में पढ़ने के घण्टों में कमी करना तय किया।

टेक्निकल स्कूल

टेक्निकल स्कूल भी सीनियर और जूनियर होते हैं। जूनियर में भिन्न भिन्न पेशे की कारीगरी आमतौर पर सिखाई जाती है, ताकि स्कूल से निकलने के बाद विद्यार्थी अपने पेशे को सुचारु रूप से चला सकने में समर्थ हो सकें। सीनियर स्कूल में हर एक पेशे में गहराई तक प्रवेश करने के उद्देश्य से विद्यार्थियों को मदद दी जाती है। उन्हें कारबार चलाने की तथा कारखानों के सञ्चालन की भी शिक्षा दी जाती है।

प्राइमरी स्कूलों में पढ़े हुए लड़के जूनियर टेक्निकल स्कूल में भर्ती हो सकते हैं। उनकी आयु १२ से १८ तक होनी चाहिए। सीनियर टेक्निकल स्कूल में जूनियर मिडिल स्कूल से पास हुए लड़के भर्ती हो सकते हैं। उनकी आयु १५ और २२ वर्ष के बीच होनी चाहिये। उन स्कूलों में निम्नलिखित विषय पढ़ाये जाते हैं:—

कृषि, जंगल की रक्षा, पशु विद्या, बागवानी, दस्तकारी, लकड़ी पर नक्काशी का काम, फोटोग्राफी, छापाखाने का काम, कपड़े की बुनाई, चीनी मिट्टी के खिलौने आदि तैयार करने की कला।

(१) कृषि—पशुविद्या, बागवानी, जंगल की रक्षा।

(२) दस्तकारी—लकड़ी पर नक्काशी का काम फोटोग्राफी, मोनाकारी का काम, साधारण इन्जीनियरिङ्ग, चीनी मिट्टी के खिलौने बनाना, कपड़े बुनना, छपाई का काम इत्यादि।

(३) व्यापार—बहीखाता, टाइप राइटिङ्ग, हिसाब किताब का काम, बीमा, सट्टा, विज्ञापन कला इत्यादि।

(४) गृह शिक्षा—भोजन कला, सिलाई, कसीदा, दाईगीरी, बीमार की सेवा सुश्रूषा।

टेक्निकल स्कूल में प्रति सप्ताह ४८ घण्टे पढ़ाई होती है। इन स्कूलों में अमली काम पर ज्यादा जोर दिया जाता है। अतएव इन स्कूलों के साथ वर्कशाप, फार्म और फैक्टरियाँ भी रहती हैं।

१९१२ में प्रजातंत्र की स्थापना हुई। तब से २४ वर्षों के भीतर चीन में शिक्षा की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। मिडिल स्कूलों की संख्या १९१२ में ५०० थी। १९३६ में यह संख्या २००० पहुँच गई।

शिक्षा में आर्थिक समस्या

चीन में दो तरह के मिडिल स्कूल हैं। एक सरकारी और दूसरे ग़ैर सरकारी। ग़ैर सरकारी स्कूल या तो जनता के चन्दे से चलते हैं, या किसी संस्था विशेष की ओर से। मिशनरियों के स्कूल भी इसी श्रेणी में आते हैं। सरकारी स्कूल केन्द्रीय गवर्नमेण्ट, प्रान्तीय सरकार, या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से अपना खर्च पाते हैं। किन्तु नार्मल स्कूल, जहाँ पर अध्यापकों को शिक्षा दी जाती है, सरकार की ओर से ही खोले जा सकते हैं। किसी ग़ैर सरकारी संस्था को नार्मल स्कूल खोलने की आज्ञा नहीं मिल सकती।

मिडिल स्कूलों का १९३६ का खर्च लगभग ५ करोड़ ८ लाख डालर था। सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि ग़ैर सरकारी स्कूलों की आर्थिक स्थिति कुछ अधिक सन्तोषजनक नहीं है।

विज्ञान की शिक्षा

मिडिल स्कूलों में विज्ञान की ओर रुचि पैदा कराने में अधिकारियों को काफ़ी अड़चनों का सामना करना पड़ा था। चीन की संस्कृति में साहित्य और कला का बहुत ही ऊँचा स्थान है। अतः विद्यार्थियों का झुकाव स्वभावतः साहित्य की ओर होता है और इस कारण गणित, भौतिक विज्ञान, केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र) के प्रति उनके हृदय में अरुचि सी पैदा हो जाती है। अतः विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिये काफ़ी परिश्रम करना पड़ा।

इसके अतिरिक्त और भी मुश्किलें हैं—धन की कमी से अधिक प्रयोगशालाएँ इन स्कूलों में नहीं बन पातीं। विज्ञान की शिक्षा देने के लिये

योग्य अध्यापकों की भी चीन में कमी है। शिक्षा विभाग की ओर से इन स्कूलों तथा प्रयोग-शालाओं में जिन यन्त्रों के रहने की आवश्यकता है, उनकी नामावली भी भेजी गई है।

कहीं कहीं तो धन की कमी से दो दो तीन तीन स्कूलों के बीच एक ही प्रयोगशाला है। शिक्षा विभाग के मंत्री ने सरकारी प्रबन्ध करके इन स्कूलों के लिये वैज्ञानिक यंत्रों के निर्माण करने का आयोजन किया है, और लागत दाम से भी कम कीमत पर ये स्कूलों के दिये जाते हैं। करीब करीब इस नई योजना के अनुसार २००० स्कूलों में प्रयोगशाला का सामान भेजा गया है।

अध्यापकों को सहायता

अध्यापकों को नवीनतम आविष्कारों से परिचित कराने तथा उन्हें शिक्षा के नये तरीकों के सम्पर्क में आने का अवसर देने के उद्देश्य से १९३३ में शिक्षा विभाग ने नियम बनाया कि गर्मी की छुट्टियों में प्रत्येक विश्वविद्यालय की ओर से दो महीने के लिये मिडिल स्कूल के अध्यापकों को उनकी आवश्यकता नुसार शिक्षा दी जायगी। कभी कभी कई एक विश्वविद्यालय मिल कर ग्रीष्म ट्रेनिङ्ग स्कूल चलाते हैं। इन स्कूलों में भर्ती होने के लिये सरकारी अफसर अध्यापकों को चुनते हैं, और उन्हें भत्ता भी दिया जाता है। प्रत्येक अध्यापक को तीन वर्ष में एक बार इस ग्रीष्म ट्रेनिङ्ग स्कूल में जाकर अवश्य व्याख्यान सुनने पड़ते हैं। ग्रीष्म ट्रेनिङ्ग स्कूलों में अंग्रेजी भाषा, इतिहास, भूगोल और विज्ञान की विशेष पढ़ाई होती है।

टेक्निकल स्कूल के अध्यापकों को भी ट्रेनिङ्ग का अवसर दिया जाता है। बड़े बड़े कारखानों तथा कृषि विश्वविद्यालय की ओर से इन अध्यापकों की ट्रेनिङ्ग का प्रबन्ध होता है।

स्कूलों में व्यायाम

जनवरी १९३७ में शिक्षा विभाग के मंत्री ने व्यायाम सम्बन्धी नये नियम बनाये। इनके अनुसार ३ बजे के बाद मिडिल स्कूलों में पढ़ाई बन्द हो जाना जरूरी है। इसके बाद लड़के खेल कूद में भाग लेते हैं। प्रत्येक स्कूल में शाम का खेल अनिवार्य बना दिया गया है। सवेरे के व्यायाम पर भी काफ़ी जोर दिया जाता है।

स्कूलों में सफ़ाई और स्वच्छता पर भी काफ़ी परिश्रम और धन व्यय किया जाता है। हर एक विद्यार्थी के पीछे प्रति वर्ष एक डालर के हिसाब से इसमें खर्च किया जाता है। इसमें से ४० प्रतिशत तो विद्यार्थी को अपनी फीस के साथ देना होता है और शेष ६० प्रतिशत स्कूल देता है। हाईजीन (स्वास्थ्य) और फर्स्टएड (प्रारम्भिक उपचार) की शिक्षा पर भी काफ़ी ध्यान दिया जाने लगा है।

टेक्निकल स्कूलों की आर्थिक दशा

पिछले कुछ वर्षों में टेक्निकल स्कूलों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है, और केवल रुपये की कमी से और स्कूल नहीं खोले जा सके। १९३६ की जुलाई में शिक्षा विभाग ने ४ लाख ३० हजार डालर की एक रक़म टेक्निकल स्कूलों के लिये सामान खरीदने के लिये मंजूर किया। स्थानीय अधिकारी जिन स्कूलों के लिये सिफ़ारिश करते हैं, केवल उन्हें ही उक्त रक़म से सहायता मिल सकती है। एक प्रान्त में तीन से अधिक स्कूलों को इस रक़म से सहायता नहीं दी जा सकती। इस रक़म के वितरण करने के लिये एक कमिटी नियुक्त की गयी है, जो इस बात का निर्णय करती है कि किस स्कूल को सहायता मिलनी चाहिए, और किसको नहीं। १९३६-३७ में ५० टेक्निकल स्कूलों को इस रक़म से सहायता दी गई है।

टेक्निकल स्कूलों की दशा सुधारने के लिये तथा भिन्न भिन्न विषयों में अनुसन्धान करने की सुविधा प्रदान करने के निमित्त नानकिङ्ग में राष्ट्रीय केन्द्रीय टेक्निकल स्कूल खोलने की योजना हो रही है। यह केन्द्रीय स्कूल उसी टक्कर का होगा जैसा लन्दन और पेरिस में है। इस स्कीम को कार्य्यरूप में परिणित करने के लिये एक कमीशन भी नियुक्त किया गया है। इस योजना को सफल बनाने के लिये ६ लाख डालर खर्च किये जाएँगे।

उपसंहार

इस छोटे से लेख में पाठकों ने देखा होगा कि चीन में आधुनिक शिक्षा को आरम्भ हुए मुश्किल से ७५ वर्ष बीते हैं। इतने समय में प्राचीन परीक्षा पद्धति हटा कर आधुनिक पद्धति का प्रयोग आरम्भ हुआ। प्राचीन विद्या मन्दिरों के स्थान पर आधुनिक यूनिवर्सिटियाँ

खुलीं। प्रजातन्त्र की स्थापना के साथ शिक्षा में भी वृद्धि हुई। नानकिङ्गमें नेशनल गवर्नमेण्ट कायम होने पर शिक्षा विभाग में नये नये सुधार हुए। पिछली पीढ़ी के विद्यार्थियों और स्कूलों की संख्या में प्रशंसनीय वृद्धि हुई है। टेक्निकल स्कूलों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। विज्ञान पर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा। फौजी शिक्षा, व्यायाम, स्कूल की हाईजीन, टेक्निकल स्कूलों के सम्बन्ध में नई नई योजनाएँ सभी धीरे धीरे आगे आई। आशा है कि शीघ्र ही चीन से निरक्षरता का पाप दूर हो जायगा।

चीन के समाचार पत्र

पाश्चात्य देशों की तरह चीन में भी मुद्रण कला का विकास सैकड़ों वर्ष में हुआ है। संसार का प्राचीनतम समाचार पत्र चीन से ही प्रकाशित हुआ था। फिर भी यहाँ के समाचार पत्रों में आप नूतमतम शैली पायेंगे।

पेकिंग गज़ेट एक प्राचीन समाचार पत्र

गज़ेट के नाम से चीन का सर्व प्रथम समाचार पत्र प्रकाशित हुआ था। अक्सर इसे सरकारी अफसर ही पढ़ते थे। शुरू शुरू में ये बड़े मंहगे दामों में मिलते थे। अफसर लोग किराये पर समाचार पत्रों को लेकर पढ़ते थे। समाचार पत्रों के प्रायः दो संस्करण हुआ करते थे। एक साधारण और एक राजसंस्करण। राजसंस्करण की प्रतियाँ केवल धनी व्यक्ति ही खरीद सकते थे। इस गज़ेट में सरकारी विज्ञप्तियाँ, सम्राट के फरमान तथा उसके मंत्रियों की घोषणाएँ, और चीन निवासियों तथा प्रवासी चीनियों के सम्बन्ध की घटनाएँ छपा करती थीं। इस गज़ेट की पुरानी प्रतियाँ पेकिंग के संग्रहालय में अब भी देखी जा सकती हैं। आधुनिक समाचार पत्रों से इनकी रूप रेखा सर्वथा भिन्न है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारण जनता के लिये उन दिनों समाचार पत्र नहीं हुआ करते थे। हाँ कुछ हास्यरस की रचनाओं और दिलचस्प सामग्री से परिपूर्ण पर्चे अवश्य प्रकाशित होते थे, किन्तु उनका काम मनोरंजन की सामग्री जुटाने तक ही सीमिति था। समाचार तो उसमें रहते ही न थे। हाँ कभी कभी किसी बड़े घराने में कुछ दिलचस्प घटना हो गई, तो सम्पादक फौरन उसे पर्चे में छाप देता था किन्तु अकसर तो ऐसा होता था कि स्वयं सम्पादक मनगढ़न्त झूठी मूठी घटनाएँ बना कर छाप देता था। इस प्रकार के मनगढ़न्त झूठे किस्से वाले पर्चों की प्रथा अब तक थोड़े बहुत अंशों में बनी हुई है, और यही कारण है कि चीनी लोग समाचार पत्रों को बड़ी अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

इस नवीनयुग में उक्त अड़चनों के होते हुए भी, पत्रकार कला का सन्तोषजनक विकास हुआ।

आधुनिक पत्रकार कला

गवर्नमेण्ट समाचार पत्रों की सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा करती है। देश के प्रमुख राजनीतिक दल अधिक से अधिक समाचार पत्रों को अपने पक्ष में कर लेना चाहते हैं। सच्ची बात तो यह है कि एक जमाना था जब चीन के करीब सभी समाचार पत्र एक न एक राजनीतिक दल द्वारा पोषित थे, तथा उस दल की नीति का प्रचार करते थे। क्रान्तिकारी दल ने भी समाचार पत्रों का मूल्य समझा और उन्होंने प्रचार के लिये क्रान्तिकारी विचार के पत्र निकाले। निस्सन्देह इन पत्रों ने चीन में नये विचारों का खूब प्रचार किया। १९११ में मंचू खान्दान के सम्राटों का नाश कर जब चीन निवासियों ने भी प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की तो इन समाचार पत्रों ने उस क्रान्ति आन्दोलन में महत्वपूर्ण कार्य किया था। क्रान्तिकारी विचारों का एक प्रमुख पत्र "शिह पावो" था। इस पत्र के पहले अंक में निम्नलिखित पंक्तियाँ थीं :—

'डार्विन का सिद्धान्त है कि जो अपने आसपास के वातावरण के अनुकूल अपने को नहीं बना पाता वह निश्चय ही क्षय को प्राप्त होता है। यह बिल्कुल सही बात है कि जो अपने में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन नहीं लाते, वे असफलता की ओर पैर बढ़ाते हैं।

आज दिन चीन के अफसर, राजनीतिज्ञ संसार की बदली हुई परिस्थितियों से अनभिज्ञ अपने पुराने रास्ते पर आँख मूँद कर चलते जा रहे हैं। उन्हें नया मार्ग दिखाने की जरूरत है। "शिह पावो" इसी उद्देश्य को लेकर सामने आया है।..."

चीन का यह पहला प्रगतिशील दृष्टिकोण रखने वाला पत्र था। १९११ में जब प्रजातन्त्र कायम हो चुका, तब अनेक और भी समाचार पत्र प्रकाशित होने शुरू हुए। इस तरह का सब से पुराना पत्र जो आज कल भी प्रकाशित होता है, "शन पावो" है। यह ६५ वर्ष पुराना पत्र है। इस पत्र के सब से ज्यादा ग्राहक हैं। एक समय तो १॥ लाख से भी ऊपर इसकी ग्राहक संख्या थी। इस पत्र का वार्षिक मुनाफा १५ लाख पौण्ड के लगभग होता है। जिस इमारत में यह पत्र छपता है, वह ६ मंजिला है।

रूप-रेखा

इन पत्रों के कवर पेज, अंग्रेजी पत्रों की तरह ही विज्ञापनों से भरे रहते हैं।

फिर पहले पृष्ठ पर दाहिनी ओर एक कहानी होती है। उसी पृष्ठ पर प्रमुख खबरें भी छापी जाती हैं। उसी पृष्ठ पर महत्वपूर्ण एकाध लेख भी रहते हैं। इसके बाद पूरा एक पृष्ठ देश की अन्य खबरों से भरा रहता है। एक दूसरा पृष्ठ अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों के लिये रहता है—समाचारों के संग तसवीरें भी रहती हैं। बाजार भाव, खेल और मैच वगैरह, रेडियो ब्राडकास्ट, सिनेमा, थियेटर आदि का भी इन पत्रों में समावेश रहता है। प्रति दिन एक क्रोड़पत्र (Supplement), कला, साहित्य, शिक्षा, औषधि, विज्ञान आदि किसी एक विषय के सम्बन्ध में रहता है। इस क्रोड़पत्र का सम्पादन कोई बाहर का व्यक्ति करता है, जो उस विषय में एक विशेषज्ञ की हैसियत से जानकारी रखता है। चीन के समाचार पत्रों पर अमेरिकन शैली की एक गहरी छाप दृष्टिगोचर होती है।

कूमिंग टांग दल के पत्र

१९२७ में नानकिङ्ग में कूमिङ्ग टांग पार्टी के संरक्षण में नेशनल गवर्नमेन्ट कायम हुई। फल स्वरूप इस पार्टी की ओर से अनेक पत्र निकलने शुरू हुए। इन पत्रों के मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक सभी दलों के सदस्य होते हैं। इनमें सब से प्रसिद्ध पत्र 'डेली न्यूज़' है जो नानकिङ्ग से प्रकाशित होता है। इस पत्र की सम्पादकीय टिप्पणियाँ अधिकतर सरकारी दृष्टिकोण की समर्थक होती हैं। उक्त पत्र के अतिरिक्त कूमिङ्ग टांग पार्टी की ओर से एक 'केन्द्रीय न्यूज़ एजेन्सी' भी कायम की गई है। इसका कारबार सारे चीन में फैला हुआ है। २५० समाचार पत्रों को इस एजेन्सी द्वारा समाचार पहुँचते हैं। और सभी तरह के समाचार इस एजेन्सी द्वारा मिल सकते हैं। मैच, तमाशे, बाढ़, तबाही, लड़ाई, राजनैतिक व्याख्यान इत्यादि सभी तरह की सामग्री इस एजेन्सी द्वारा आप को मिल सकती है।

यह विदेश की खबरों को अँग्रेजी भाषा में भिन्न भिन्न पत्रों को पहुँचाती है। यह एजेन्सी १९२७ में स्थापित हुई।

कूमिन न्यूज़ एजेन्सी

इन दो राष्ट्रीय एजेन्सियों के अतिरिक्त और भी बीसियों एजेन्सियाँ हैं जो भिन्न भिन्न प्रान्तों में अपना कार्य्य कर रही हैं।

सेन्सर

नेशनल गवर्नमेन्ट की ओर से चीन के समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले समाचार 'सेन्सर' भी किये जाते हैं। गवर्नमेन्ट का कहना है कि देश की वर्तमान परिस्थिति उन्हें समाचार पत्रों पर सेन्सर लगाने के लिये वाध्य करती है। विशेष कर निम्नलिखित प्रकार की खबरें सेन्सर की जाती हैं:—

१. फौज सम्बन्धी ऐसी खबरें जिनसे राष्ट्र की रक्षा में विघ्न पड़ने की आशंका हो।
२. चीन और विदेशी राष्ट्रों के आपस के सम्बन्ध में किये गये समझौते के बारे में अटकल से खबरें प्रकाशित करना जब कि सरकारी तौर से वे कागजात अभी प्रकाशित नहीं किये गये।

३. ऐसी खबरें जिनसे आर्थिक झगड़े उठने की सम्भावना हो।
४. अश्लील समाचार।
५. सरकारी अफसरों की मानहानि से सम्बन्ध रखने वाली खबरें।

समाचार पत्रों के रास्ते में सेन्सर के अतिरिक्त और भी दूसरी अड़चनें हैं। चीन निवासियों में साक्षरता का सर्वथा अभाव है, और इसके साथ ही साथ साधारण जनता गरीब भी बहुत है। चीन के समाचार पत्रों के सर्वप्रिय न होने का एक और भी कारण है। ये पत्र वहाँ की साहित्यिक भाषा में अधिकतर छपते हैं, परिणाम यह होता है कि निम्न श्रेणी की जनता उस भाषा को आसानी से समझ नहीं पाती।

अन्य अड़चनें

आर्थिक कठिनाइयों का सफलता पूर्वक सामना करने के लिये कुछ प्रकाशकों ने छोटे आकार के समाचार पत्र निकालना शुरू किया है—ये बड़े सस्ते दामों में बिकते हैं, और लोग उन्हें बड़े चाव से पढ़ते हैं। समाचार पत्रों के रास्ते में एजेन्ट भी बाधा डालते हैं। ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिये ५० प्रतिशत कमीशन से कम पर ये राजी नहीं होते। मान लीजिये कि एक पत्र का दाम दो आना है, तो इसमें से केवल एक आना प्रकाशक को मिलेगा और इन एजेन्टों के बगैर काम भी नहीं चल सकता। इन लोगों ने अपना ऐसा संगठन कर रक्खा है कि इनकी सहायता के बिना किसी भी समाचार पत्र का चलना सम्भव नहीं है।

यद्यपि चीन के समाचार पत्रों के रास्ते में अनेक अड़चनें हैं, फिर भी हाल में पत्रकार कला ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। दैनिक पत्रों की संख्या पिछले दस वर्षों में तिगुनी बढ़ी है। १९२५ में ३५८ दैनिक समाचार पत्र निकलते थे—१९३५ में इनकी संख्या ९१० हो गई।

आश्चर्यजनक उन्नति

इन पत्रों की सामग्री भी पहले से अच्छी हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों पर चीन के पत्र कम ध्यान दिया करते थे। अब मंचूरिया हरण के बाद चीन की जनता बड़ी उत्सुक रहने लगी कि चीन के बाहर अन्य देशों में क्या हो रहा है? फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय खबरों को भी चीन के पत्रों में महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा।

पढ़े लिखे योग्य व्यक्ति चीन में भी पत्रकार कला को अपना पेशा बना रहे हैं—यह एक सन्तोषजनक बात है। इनमें से कितने तो अनेक ऐसे पेशे छोड़ कर आये हैं, जहाँ उन्हें काफी रुपया मिलता था, किन्तु वे पत्रकार कला से प्रेम करते हैं, और उन्हें विश्वास है कि समाचार पत्रों के जरिये वे देश का भला कर सकेंगे।

पत्रकार शिक्षा

चीन के विश्वविद्यालयों और कालेजों में पत्रकार कला की शिक्षा दी जाती है—इसके अतिरिक्त अमेरिकन ढंग पर सञ्चालित कई और स्कूल पत्रकार कला की शिक्षा के लिये खुले हुए हैं। और आशा की जाती है कि चीन की पत्रकार कला शीघ्र ही आश्चर्यजनक उन्नति कर सकेगी।

आपस में प्रतियोगिता रहते हुए भी चीन के समाचार पत्रों ने अपना एक सुन्दर संगठन कर रक्खा है। गवर्नमेन्ट के दमनकारी प्रेस कानूनों का विरोध सब समाचार पत्र मिल कर करते हैं। दो वर्ष हुए, नानकिङ्ग सरकार ने 'प्रेस' पर कुछ रोक लगाते हुए एक कानून पास किया—बस समूचे चीन में होहल्ला मच गया—जगह जगह से फरियादें गईं, प्रस्ताव पास किये गये, प्रतिनिधि लोग नानकिङ्ग गये और अन्त में सरकार को वह कानून वापस लेना पड़ा। उनके संगठन के तीन मुख्य उद्देश्य हैं :—

समाचार पत्रों का संगठन

१. प्रेस की स्वाधीनता की रक्षा करना।
२. समाचार पत्रों की उन्नति के लिये नये नये तरीके ढूँढ़ना।
३. चीन की पत्रकार कला को बहस और अनुसन्धान इत्यादि के द्वारा उन्नति के मार्ग पर ले जाना।

साम्यवाद और राष्ट्रीयता के प्रचार के साथ साथ चीन के समाचार पत्रों में निम्न कोटि की जनता—किसान, मजदूरों—के लिये भी प्रचुर मात्रा में सामग्री आने लगी। हाल में अनेक ऐसे समाचार पत्र प्रकाशित होने आरम्भ हुए हैं जिनकी भाषा बिल्कुल गँवारों की सी है। एक मामूली कुली भी,

किसानों और मजदूरों के पत्र

जिसे अक्षर ज्ञान है, इन अखबारों को बखूबी समझ सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि चीन की जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिये ऐसे समाचार पत्रों की बड़ी आवश्यकता है।

नूतनतम आविष्कार

चीन के समाचार पत्र खबरों को जल्दी से जल्दी जनता में पहुँचाने के लिये वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग कर रहे हैं। नये ढंग की बनी हुई छापने की कलें वहाँ के प्रेसों में काम कर रही हैं।

१९३१ के बाद से शंघाई में शाम को भी समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे। इस साल शंघाई की लड़ाई के समाचार जानने के लिये जनता ने इतनी अधिक उत्सुकता दिखाई कि शाम को भी पत्र निकालना जरूरी समझा गया। इस प्रकार हम देखते हैं चीन में भी यूरुप के देशों की ही भांति पत्रकार कला का विकास बिल्कुल आधुनिक ढंग पर हो रहा है।

चीन की कुछ कहावतें

[लेखक—श्री शान्तिशरण, आजमगढ़]

चीन की सभ्यता लाखों वर्ष पुरानी है। जिस समय यूरुप के निवासी असभ्य और जंगली हालत में जानवरों की खाल ओढ़े शिकार की टोह में एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते फिरते थे, चीन में लोग सभ्य जीवन बिता रहे थे। अतीत के उस धुंधले प्रभात में भी कलात्मक विकास चीन में हो चुका था। कला और साहित्य से चीन निवासी परिचित हो चुके थे।

उनके साहित्य में भावनाओं का पूर्ण रूप से समावेश भी हो चुका था। उद्रेक और जीवन अङ्ग अङ्ग में भरा था। तत्कालीन कहावतों में कितनी सजीवता, कितना भावावेश कितना रस था, उसका अनुभव करते ही बनता है!

आश्चर्य होता है कि सहस्रों वर्ष पहले की निर्मित कहावतों में आज भी वही ताजगी मौजूद है। इस बीसवीं शताब्दी के व्यस्त जीवन में भी वे कितनी सही उतरती हैं। इस कल और कारखाने के युग में भी ये कहावतें सजीव जान पड़ती हैं।

प्राचीन काल के साहित्यकारों ने कहावतों के बनाने में काव्य के मिठास का पूरा ध्यान रक्खा। उनकी कहावतों में कविता का मजा आता है। शब्दों की मितव्यता का ध्यान अँग्रेजी तथा यूरुप की अन्य आधुनिक भाषाओं में काफी रक्खा जाता है। विज्ञान का तकाजा भी शायद यही है। लेकिन कहावतों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिये जरूरी है कि उसमें काव्यात्मक कला का समावेश प्रचुरता से हो। उनका सम्बन्ध मस्तिष्क से कम और हृदय से ज्यादा हो।

हिन्दी में भी इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है। गाँवों में आप चले जाइये सब जगह आपको कहावतें सुनने को मिलेंगी। बे पढ़े लोगों की जबान पर भी इन कहावतों को आप पायेंगे। चीन की कहावतों में साधारण बोलचाल की भाषा में गूढ़ से गूढ़ बातें कह दी गई हैं। बिना प्रयास के जन साधारण तक दर्शन और तर्क शास्त्र के गुर इन कहावतों द्वारा पहुँचाये गये हैं।

हम कुछ कहावतें पाठकों के मनोरञ्जन के लिये नीचे दे रहे हैं और साथ ही साथ हिन्दी की कहावतें भी दी जा रही हैं।

पाठक स्वयं देखेंगे कि हिन्दी की कहावतें संक्षिप्त हैं। तथा उपमाओं को उतनी प्रचुरता हिन्दी की कहावतों में नहीं है जितनी चीन की कहावतों में। चीन की कहावतों में एक पूरी तसवीर मानों खड़ी कर दी गई है। इन कहावतों से हमें पता चलता है कि प्राचीन काल में चीन वालों की कला का दुनियाँ में कितनी दूर तक प्रवेश था।

कहावतें (चीनी)	अर्थ (हिन्दी)
भिखमंगे भी टूटे हुए पुल के ऊपर से गुजरना नहीं चाहते।	जिन्दगी सबको प्यारी होती है।
फूल देखना आसान है किन्तु उन्हें काढ़ना कठिन है।	कहना सहल होता है करना मुश्किल।
घुड़सवार को साईस की तकलीफ़ों का पता नहीं होता।	जाके पैर न जाय बेवाई सो क्या जाने पीर पराई।
तूफ़ान के बाद सेब इकट्ठे करने को मिलते हैं।	सब दिन नहीं बराबर जात।
शेर के जुएँ न ढूँढ़ो।	आग से मत खेलो।
दो नावों में पैर मत दो।	दो नावों में पैर मत दो।
जो व्यक्ति घोड़ा खरीदता है, वही उस पर चढ़ता भी है।	जिसकी बँदरिया वही नचावे दूसर को वह काटन धावे।
अगर तुम्हारे पैसा है तो शैतान भी तुम्हारी चक्की चलायेगा।	पैसे का सब जगह ज़ोर है।
तुम अण्डे की जगह शलजम एक ही बार रख सकते हो।	काठ की हांडी चढ़े न दूजी बार।
एक बड़ी मुर्गी नन्हे चावल के दाने नहीं खाती।	पपीहा स्वाती के जल से ही प्यास बुझाता है।
बढ़िया नगारे के लिये मोटा डण्डा नहीं चाहिये।	कर कङ्कन को आरसी क्या ?
कछुआ जानता है कब उसे अपनी गरदन समेट लेनी चाहिये।	अपना बुरा भला सभी पहचानते हैं।
योग्य मंत्री कम बोलता है।	खाली गागर ज्यादा छलकती है।
यदि तुम काले हृदय के आदमी ढूँढ़ते हो तो वहाँ जाओ जहाँ लोग बुद्ध देव की पूजा करते हों।	बगुला भगत से होशियार रहो।
चिकनी बातें, किन्तु छुरी वाला हृदय।	मुँह में राम बगल में छुरी।
चूहे की मौत पर बिल्ली रोये।	पाखण्डी का क्या एतबार।
पापी जल्द मरते हैं।	पापियों का नाश भगवान करता है।
तुम्हारे हाथ के दोनों ओर मांस होता है।	प्रत्येक सवाल के दो पहलू हुआ करते हैं।
चूहे की आँखों को रञ्च मात्र ही प्रकाश दिखाई पड़ता है।	कूप मण्डूक की दुनियाँ कुएँ तक ही सीमित है।
अगर किसान मिहनती है, तो खेत काहिल न रहेगा।	मिहनत कभी बेकार नहीं जाती।
बुद्धिमान पुरुष भगवान की मर्जी भांप लेता है।	आसमान का रंग पहचानना।
शेर का माला फेरना।	सत्तर चूहा खाकर बिल्ली हुई भगतिन।

इस तरह हम देखते हैं कि चीन की कहावतों में रूप रंग भरने का खूब प्रयत्न किया गया है। मानों कुशल चित्रकार ने अपनी तूलिका से रंग भर कर इन कहावतों में सजीवता का पुट भर दिया है। यही कारण है कि चीन के देहातों में भी कहावतें खूब प्रचलित हैं।

चीनी मनोरंजन और खेल-कूद

[लेखक—श्री आनन्दमोहन जागीरदार]

चीनी स्वभावतः इतने आलसी होते हैं कि उन्हें खेल-कूद ज्यादा नहीं भाता। उनके यहाँ न तो क्रिकेट, टेनिस, हाकी इत्यादि की पहुँच है और न इनके समान उनके निजी खेल कूद हैं। घुड़दौड़, चाँदमारी, वजन उठाना, गोला फेंकना, और दौड़ना इत्यादि चीन में मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के खेल कूद में नहीं गिने जाते। उनकी गिनती है फौजी खेल कूद में

चीनी मनोरंजन में पहला स्थान है 'बटेर' लड़ाना। चीन की प्रत्येक सड़कों पर—विशेषतः कैन्टन में—बटेर लिये हुए मनुष्य बहुतायत से दिखाई देते हैं। जैसा आप जानते हैं, बटेर पक्षियों में द्वेष बहुत होता है। जहाँ दो बटेर लड़ने के लिये पिंजड़े से मुक्त किये गये फौरन आपस में गुथ जाते हैं। और जब तक दो में से एक मर नहीं जाता, वे लड़ते रहते हैं।

झींगुर लड़ाना भी चीन में बड़ा प्रचलित खेल है। यह खेल पेकिंग और उसके दक्षिण कुछ दूर तक खूब प्रसिद्ध है। पेकिंग में तो सैकड़ों झींगुर-युद्ध के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। ये झींगुर चीनी मिट्टी के बर्तन में रक्खे जाते हैं। और ये इतने लड़ाकू होते हैं कि मृत्युपर्यन्त लड़ते रहते हैं।

मुर्ग लड़ाना भी चीन का बड़ा पुराना खेल है, परन्तु आजकल इसका रवाज कम हो गया है। तब भी चीनी बन्दरगाहों में विदेशी नाविक अपने छुट्टी के दिन इसी खेल में बिताते हैं। लगभग १२०० वर्ष पहले, एक चीनी सम्राट—जिसने स्त्रियों के छोटे पैर रखने का रवाज शुरू किया—इस खेल को बहुत पसन्द करता था। प्रति वर्ष वसन्त ऋतु में अपने उद्यान में वह बड़ा भारी दरबार करता था जिसमें वह अपने मुर्गों के युद्ध का प्रदर्शन करता था। उसके पास एक हजार मुर्ग थे जिनकी परिचर्या के लिये पाँच सौ मनुष्य नौकर थे। इसके पहले भी मुर्ग लड़ाने का बड़ा प्रचार था। यत्र तत्र विजयी मुर्गों की कविताएँ चीनी साहित्य में मिलती हैं।

ऊँट लड़ाना और मेढ़ों के युद्ध भी इनके प्रिय खेल हैं। लगभग एक हज़ार वर्ष पहले कू-चे (तुरफ़ान और काशगर के मार्ग में स्थित) नामक स्थान में मेढ़े लड़ाना एक मुख्य खेल था। मेढ़े लड़ा कर पैदावार का अनुमान किया जाता था। हिउंग-नू का खान प्रति वर्ष अपने डेरे में घुड़दौड़ और मेढ़े की लड़ाई करवाता था।

पेकिंग के कुछ दूर पश्चिम में घुड़दौड़ और रथ-दौड़ भी होती थी। यह खेल प्रायः मंचू फ़ौज की क़वायद के समय होते थे परन्तु जनता में यह खेल प्रचलित न हो पाये।

बाज़ पालना भी यहाँ का अच्छा मनोरंजन है। बाज पालतू बना कर चिड़िया पकड़ने के लिये उपयोग में लाये जाते थे। परन्तु अब तो ये केवल शौकिया ही पाले जाते हैं।

मङ्गोलिया में पहले बर्फ में छेद करके मछली पकड़ना बड़ा अच्छा खेल था परन्तु अब तो मङ्गोलियन ख़ुद इतने आलसी हो गये हैं कि खेल कूद को पसन्द नहीं करते।

बिना व्यायाम के मनोरञ्जन चीन में बहुत सर्वमान्य है। इन खेलों में भी सब से प्रचलित खेल जुआ है। जुआ अधिकतर ताश से खेला जाता है। चीनी ताश लम्बाई में तो भारतीय ताशों के ही बराबर होता है लेकिन चौड़ाई में वे आधे ही होते हैं। इसमें तो कोई शक है ही नहीं कि चीन में ताश का प्रचार ईसा के पूर्व से ही था परन्तु अभी तक किसी ने चीनी ताश के खेलों की गम्भीर विवेचना नहीं की है। ताश के खेलों में "मेरे पड़ोसी से माँग" खेल बड़ा प्रसिद्ध है।

चीनी शतरञ्ज का अध्ययन कई योरपीय सज्जनों ने किया है जिनमें श्रीयुत दौलिङ्गतर्थ (१८६६), अध्यापक हिमली (१८६९) और सिन्योर बोल पिसेली (१८८९) मुख्य हैं। अब तक इसका निबटारा नहीं किया जा सका है कि शतरंज का जन्म स्थान चीन है या भारतवर्ष। लेकिन यह तो सिद्ध है कि यह खेल ईसा के पूर्व चीन में खेला जाता था। चीनी शतरंज के

तख्ते में भारतवर्ष की तरह चौंसठ खाने होते हैं। लेकिन उनमें 'नदी' और होती है जिसमें ८ खाने और होते हैं। चीनी लोग शतरंज के खेल को दिमाग का एक अच्छा व्यायाम समझते हैं।

पाँसे का खेल तो चीन में बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। पाँसा हाथ में लेकर एक चावल के ढेर पर फेंका जाता है। पाँसे के तीन तरह के खेल होते हैं। पहले में ६ पांसे लगते हैं। दूसरे में ३ पांसे और तीसरे में केवल २ ही पांसों की जरूरत होती है।

चीन में अधिकतर उपर्युक्त खेल ही खेले जाते हैं। कुश्ती लड़ना भी उनके यहाँ प्रचलित है परन्तु उसका अधिक प्रचार नहीं है।

चीन में हवाई डाक तथा वायुयान सेना

[लेखक—श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव]

सभी देशों में वायुयानों की उन्नति के पीछे देश के साहसी व्यक्तियों की दिलचस्पी रही है। शुरू शुरू में लोगों ने एक खेल तमाशे की तरह वायुयानों की दौड़ में भाग लिया। यद्यपि वायुयानों के टूर्नामेण्ट खतरे से खाली न थे तो भी इस खेल में मज़ा खूब आता था। समय की प्रगति के साथ वायुयानों का प्रयोग खेल तमाशे के अतिरिक्त और चीज़ों के लिये भी होने लगा। पहले युद्ध के लिये ये प्रयोग में लाये गये, फिर व्यापार के निमित्त भी ये बड़े काम की चीज़ साबित हुए। आज संसार के सभी देश वायुयानों के प्रति अपनी दिलचस्पी दिखला रहे हैं। आधुनिक सेना निर्माण में या डाक के काम के लिये वायुयानों का होना एक प्रकार से अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

चीन में मशीनों का चलन देर से आरम्भ हुआ अतएव वायुयान भी इस देश में काफ़ी देर में पहुँचे। १९०८ के पहले प्रान्तीय फ़ौजों के पास पुरानी चाल के गुब्बारे थे। १९०९ में एक फ्रान्सीसी उड़ाके ने प्रदर्शन के तौर अपना हवाई जहाज़ चीन में उड़ाया। चीन के सरकारी अफसरों की वायुयानों के प्रति अब दिलचस्पी बढ़ी। लोगों ने अनुभव किया कि लड़ाई के लिये वायुयानों के बिना पूरी तैय्यारी हो ही नहीं सकती। इसीलिये १९११ के विद्रोह में दक्षिण के के क्रान्तिकारियों ने हवाई जहाज़ों से पीपिंग पर बम बरसाने की बात सोची। आस्ट्रिया से इस काम लिये दो हवाई जहाज़ भी खरीदे गये। इस तरह सेना विभाग का ध्यान हवाई जहाज़ों की ओर आकर्षित हुआ। सितम्बर १९१३ में पीपिंग के विद्रोह शान्ति के बाद वायुयान सञ्चालन की शिक्षा देने के लिये एक स्कूल भी खोला गया। फ्रान्स से ३ लाख डालर में १२ हवाई जहाज़ भी खरीदे गये, तथा फ्रान्सीसी विशेषज्ञ इस स्कूल के संचालन के लिये बुलाए गये। इस तरह कुछ वर्षों के भीतर अनेक चीनी वायुयान सञ्चालन में दक्ष हो गए। अक्टूबर १९१९ में २० लाख डालर में १०० तिजारती वायुयान खरीदने का प्रस्ताव पीपिंग गवर्नमेण्ट ने पास किया। किन्तु इसी बीच गृह युद्ध की ज्वाला भभक उठी, और १९२७ तक जब कि नेशनल गवर्नमेण्ट स्थापित हुई, इस दिशा में कुछ विशेष उन्नति नहीं हुई। इस गृहयुद्ध ने पीपिंग के इस वायुयान सञ्चालन स्कूल की बड़ी हानि की। स्कूल की कितनी मशीनें आदि लूट खसोट में चली गईं, कितनी हो नष्ट कर दी गईं। हाँ इस गृहयुद्ध के समय में प्रान्तीय सरकारों ने अपनी अपनी सेना को सुसंगठित बनाने के लिये कुछ वायुयान अवश्य खरीदे। उत्तर चीन के पास दस दस वायुयानों के कई जत्थे थे। जिनके नाम 'फ्लाइंग टाइगर' फ्लाइँग 'ड्रैगन' या 'फ्लाइंग ईगल' इत्यादि रक्खे गये थे। १९२४ में उत्तरपूर्व चीन में हवाई जहाज़ों से डाक ढोने का भी प्रबन्ध किया गया। किन्तु सच बात तो यह है कि १९२८ तक व्यापारिक दृष्टि कोण से वायुयान सम्बन्धी योजनाओं पर तो किसी

ने विचार तक नहीं किया। सब जगह अपनी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने के लिये लड़ाई के जहाज़ खरीदे जा रहे थे।

नेशनल गवर्नमेन्ट ने १९२८ में इस प्रश्न को अपने हाथ में लिया और नानकिङ्ग-कैन्टन, होनान तथा वूहन में प्रथम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वायुयान सञ्चालन-स्कूल खोले गये, और इन स्कूलों का काम चलाने के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड चुना गया। इस वायुयान-संघ का प्रधान कार्यालय शंघाई में है। इस संघ की ओर से जगह जगह वायुयान क्लब खोले गये हैं। अब व्यापारिक उद्देश्य से योजनायें बनाई जाने लगीं।

मई १९२९ में चीन के रेल विभाग के मंत्री ने अमेरिका की एक कम्पनी को चीन में डाक और मुसाफिर ढोने के लिये वायुयान सर्विस कायम करने का ठेका देने का प्रस्ताव एसेम्बली में पेश किया। लोगों ने इसका विरोध किया। फलस्वरूप मंत्री ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। नये मंत्री ने एक दूसरी योजना एसेम्बली के सामने पेश की। इसके अनुसार उक्त कम्पनी और चीन की सरकार दोनों आधी आधी पूंजी लगा कर इस वायुयान सर्विस को शुरू करेंगी (चीन सरकार का यह नियम है कि चीन के किसी भी कारबार में चीन का रुपया कम से कम ५० प्रतिशत लगा होना चाहिये) उक्त स्कीम की पहली सर्विस लाइन शंघाई और शेंगटू के बीच बनी। उस लाइन पर नानकिङ्ग, एकिङ्ग, किऊकिङ्ग, हांगको, शांसी और चुगकिङ्ग आदि स्थान हैं। ये सभी तिजारती शहर यांगटिसी नदी के किनारे पर पड़ते हैं।

अक्टूबर १९२९ में शंघाई से हांगको को पहला डाक का जहाज़ रवाना हुआ। ७ घंटे में ५४० मील की दूरी इस वायुयान ने तै की। इसके बाद उत्तरोत्तर इन वायुयानों के इंजिनों की शक्ति बढ़ाई जाने लगी। १९३५ में नई क़िस्म के इंजिन लगा कर ये वायुयान इस काबिल बना दिये गये कि एक ही दिन में शंघाई से हांगको जाकर लौट भी आयें। १९३६ में और भी शक्तिशाली इंजिन लगाए गये। शंघाई से हांगको आने में केवल ३ घण्टे का समय खर्च होता था। १९३६ में शंघाई-शेङ्गट लाइन भी खोली गई। १००० मील की दूरी केवल ७ घण्टे में तै होती है। इस लाइन पर सप्ताह में तीन बार डाक आती जाती है।

इस रास्ते पर १० जनवरी १९३३ को पहला वायुयान उड़ा। शंघाई से उत्तर चीन के समुद्रतट के

शंघाई-पीपिङ्ग लाइन

समृद्धशाली नगरों (हैयश्चू, जिंगटू, टियन्सटीन) से होता हुआ ७॥ घण्टे में वायुयान पीपिङ्ग पहुँचा। १४ मई १९३५ को इस लाइन पर एक्सप्रेस सर्विस कायम हो गई। शुरू में तो सप्ताह में दो ही बार इस लाइन पर वायुयान आते जाते थे, किन्तु बाद में आमद इतनी ज्यादा हो गई कि प्रति सप्ताह तीन सर्विस कर दी गईं।

यह लाइन दक्षिण चीन के समुद्रतट पर स्थित नगरों को मिलाती है। २४ अक्टूबर १९३३ को

शंघाई-कैन्टन लाइन

इस सर्विस का उद्घाटन हुआ। शंघाई से कैन्टन तक पहुँचने में केवल ७ घण्टे लगते हैं।

१३ फरवरी १९३६ को चाइनीज़-नेशनल-एविएशन कारपोरेशन की सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय वायु-

यूरुप से सम्बन्ध

यान सर्विस से चीन का भी सम्बन्ध स्थापित हो गया। अब 'एयर फ्रांस' के द्वारा हनोई का सीधा सम्बन्ध पेरिस से हो गया है।

१९३० में चीन सरकार ने बर्लिन की एक कम्पनी से तय किया कि दोनों मिल कर चीन से रूस होते हुए यूरुप तक जाने के लिये वायुयान सर्विस स्थापित करेंगे। इस योजना के अनुसार शंघाई से नानकिङ्ग-पीपिङ्ग, साइबीरिया होते हुए बर्लिन तक पहुँचने की बात थी। १९३१ में कम्पनी ने काम आरम्भ तो कर दिया, किन्तु मन्चूरिया की घटना के कारण कम्पनी सुचारु रूप से अपना काम न कर सकी। किन्तु दूसरे रास्ते की तलाश की गई, और कम्पनी ने इस दिशा में अपना प्रयत्न निरन्तर जारी रक्खा। ४ सितम्बर १९३३ को बर्लिन से एक वायुयान रवाना हुआ और मास्को, सूशोव होता हुआ ८ सितम्बर को शंघाई पहुँचा। इस लम्बी यात्रा में कुल ४ दिन लगे। ३१ अगस्त १९३४ को एक दूसरा वायुयान बर्लिन से एथेन्स, बग़दाद, कलकत्ता, कैन्टन होता हुआ ६ सितम्बर को शंघाई पहुँचा। इस घुमाव

वाले रास्ते से होकर भी शंघाई पहुँचने में कुल ७ दिन लगे।

इस कम्पनी ने चीन के भीतर वायुयान मार्गों का बहुत ही अच्छा संगठन किया है। सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि १९३६ में डाक या मुसाफिरों के सम्बन्ध में किसी किस्म की दुर्घटना नहीं हुई। हां राजनैतिक और आर्थिक बखेड़ों के कारण बर्लिन-मास्को-शंघाई लाइन अभी तक स्थापित नहीं हो सकी।

केन्द्रीय सरकार ने सेना के वायुयान विभाग की वृद्धि करने की ओर काफी ध्यान दिया है। सेना सम्बन्धी वायुयान सञ्चालन की शिक्षा देने के लिये मई १९२२ में हांगको में स्कूल खोला गया।

सेना सम्बन्धी वायुयान सञ्चालन

आधुनिक ढंग पर शिक्षा देने का प्रबन्ध यहां पर है। आरम्भ में अमेरिका से विशेषज्ञ स्कूल के संचालन के लिये बुलाये गये थे। १९३५ में ये विशेषज्ञ अमेरिका वापस चले गये, और अब चीनी लोग ही इस स्कूल का सञ्चालन कर रहे हैं। हां तरीक़ा अमरीकन ही बरता जाता है। होनन प्रान्त में भी वायुयान सञ्चालकों की शिक्षा के लिये स्कूल है। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों ने भी उक्त शिक्षा का प्रबन्ध किया है।

हांगको तानशंग और शिकवान में वायुयान बनाने के कारखाने भी खुल गये हैं। केवल इंजिन के पुर्जे बाहर से मंगाये जाते हैं, फिर उन्हें एकत्रित कर वायुयान में फिट कर देते हैं। पैराशूट इन्स्टीच्यूट भी कई जगह पर हैं, जहाँ पैराशूट बनाए जाते हैं, और उन्हें ठीक तरीके से इस्तेमाल करना भी सिखाया जाता है। इनके अतिरिक्त अभी हाल में चीन सरकार और कई एक विदेशी कम्पनियों में सुलह हुई है जिसके अनुसार वायुयान निर्माण के लिये कई एक कारखाने और खोले जाँयगे। इन कारखानों का सञ्चालन चीन सरकार और विदेशी कम्पनियाँ मिल कर करेंगी और चीन सरकार को यह अधिकार होगा कि एक निश्चित अवधि के उपरान्त यदि वह चाहे तो उन्हें खरीद ले।

१९३२ में चीन में केवल १५० वायुयान थे। किन्तु १९३२ की शंघाई की लड़ाई ने चीन वालों की आँखें खोल दीं। जंगी वायुयानों के बेड़े न रहने से आधुनिक लड़ाइयों में क्या दिक्कतें सामने आती हैं, इसका इन्हें भली भांति अनुभव हो गया। तब से हवाई बेड़े को बढ़ाने के लिये, तथा लड़ाई के लिये वायुयान सञ्चालकों को तैय्यार करने के लिये चीन भरपूर प्रयत्न करता रहा है। १९३३-३५ में चीन ने अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र से २८७ वायुयान, और १०७ इंजिन खरीदा। १९३६ के पहले ६ महीनों में ११२ वायुयान और १५७ इंजिन अमेरिका से खरीदे गये। इस सिलसिले में एक मजेदार बात का उल्लेख कर देना शायद अनुपयुक्त न होगा। वह यह कि जेनरल चियाँग-काई-शेक को उनकी वर्षगाँठ के उपलक्ष में वायुयान भेंट देने की व्यवस्था की गई थी। ३५ लाख डालर इस फन्ड में चन्दे द्वारा एकत्रित हुआ था। इधर हाल में फ्रान्स और इटली से भी काफ़ी संख्या में वायुयान खरीदे गये हैं।

हांगको एकेडमी ने अभी तक १५० नवयुवकों की सात टोली को वायुयान की युद्ध सम्बन्धी शिक्षा दी है। इनमें से १०५० को चीन की वायुसेना में उच्च पद मिले हुए हैं। चीन की इस वायुसेना में ५०० से अधिक वायुयान हैं।

शंघाई, नानकिङ्ग, और हांगको आदि में समय समय पर वायुयानों की बम वर्षा से बचने के लिये कौन सी तरकीबें काम में लाई जाँय, इस बात का अभ्यास कराया जाता है, ताकि हमले के समय नागरिक अपनी रक्षा कर सकें। गैस मास्क (एक तरह का थैला) लगा कर विषैली गैसों से अपनी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये, इसका भी प्रदर्शन चीन के शहरों में किया जाता है। वायुयान द्वारा सफर करने के लिये, तथा डाक भेजने के लिये जनता में सरकार की ओर से प्रचार कार्य्य भी खूब जोरों में हो रहा है।

जापान ने शुरू से ही इस बात पर जोर दिया है है कि उसे यह हक प्राप्त है कि मंचूरिया और उत्तर चीन में मुसाफिर और डाक ढोने के लिये वह हवाई मार्ग की स्थापना करे तथा वहीं उसका सञ्चालन भी करे। १८ अक्टूबर १९३६ को इस आशय का एक

जापानी एयर लाइन

राज़ीनामा होपाई-चहार (उत्तर चीन के दो सूबे) के राजनीति मंत्री और जापान के वैदेशिक दूत के बीच लिखा गया। इस तरह ह्वीटांग-एयर-नेविगेशन कम्पनी की नींव पड़ी। इस कम्पनी के पास जापान के बने हुए कई एक वायुयान हैं तथा वायुयान सञ्चालक, मिस्त्री, विशेषज्ञ सभी जापानी हैं। इस कम्पनी में ७ डाइरेक्टर हैं, जिसमें ४ जापानी और ३ चीनी हैं। इस कम्पनी का प्रधान कार्यालय पीपिंग में है। इस कम्पनी की ओर से तीन एयर लाइनों का सञ्चालन युद्ध आरम्भ होने के पूर्व होता था।

(१) टियन्टसिन-मकडन

(२) पेपिंग-शेन्गतेह

(३) डेयरन-ट्ज़िंगटो

सरकारी तथा अख़बारों की रिपोर्टों के देखने से मालूम पड़ता है कि उक्त कम्पनी अपनी योजना में असफल रही है। इस लाइन द्वारा चीनी लोग कम सफ़र करते हैं। अधिकांश जापानी फौज के अफसर ही इसका प्रयोग करते हैं। एक तरह से यह कम्पनी पूर्णतया जापानी समझी जाने लगी है। तीन चीनी डाइरेक्टर बोर्ड में केवल नाम के लिये हैं। थोड़े शब्दों में यह कहना ग़लत न होगा कि इस कम्पनी की उपयोगिता इसी में है कि जापानी फौजों को एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से ले जाया जा सके। 'चाइना टाइम्स' समाचार पत्र के अनुसार यह कम्पनी अब तक लगभग ७ लाख डालर का नुक़सान उठा चुकी है।

इस छोटे से लेख में चीन के वायुयान विभाग का विकास दिखाने का प्रयत्न मैंने किया है। अन्त में दो शब्द मुझे और कहना है। चीन ऐसे विशाल देश को एक सूत्र में बांधे रखने के लिये वायुयान ही एक मात्र अनुपम साधन है। और समूचे चीन को बिना संगठित किये राष्ट्र की आर्थिक तथा राजनैतिक उन्नति होना कठिन है। वायुयान के प्रचार हुए कुछ बहुत दिन नहीं हुए, किन्तु अभी ही चीन में एकता का भाव काफ़ी जोरों में भिन्न भिन्न रूपों में व्यक्त हो रहा है। भिन्न प्रान्तों के निवासी अनुभव करते हैं कि वे एक दूसरे के बहुत निकट आ गये हैं। हमें तो पूरा विश्वास है कि चीन में वायुयान सर्विस अभी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ेगी।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं। राष्ट्र की रक्षा के लिये फौज में वायुयान विभाग का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा में अब तक तो चीन अन्य पश्चिमीय राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत ही पीछे रहा है। पिछले ५ वर्षों के अन्दर चीन सरकार ने इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न किये हैं, और निसन्देह थोड़े ही दिनों के अन्दर चीन के पास भी सामरिक वायुयानों का एक ज़बर्दस्त बेड़ा तय्यार हो जायगा।

महात्मा कन्फ्यूशियस

चीन में कन्फ्यूशियस का नाम बच्चे तक जानते हैं। चीन का सामाजिक जीवन कन्फ्यूशियस के प्रभाव से ओत-प्रोत है। कन्फ्यूशियस का महत्व समझने के लिये तत्कालीन चीन के इतिहास पर भी हमें दृष्टि डालनी होगी।

ईसा से ५०० वर्ष पहले चीन में 'शो' वंश का राज्य था। इस वंश ने चीन में ईसा से १२०० वर्ष पूर्व से लेकर २५० वर्ष पूर्व तक राज्य किया, किन्तु इस वंश का भाग्य सूर्य्य ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से ही अस्त होने लग गया था। राजा के अधिकार से दूरस्थ प्रान्त निकल गये थे। राजा की शान नाम मात्र को रह गई थी। कन्फ्यूशियस भी इन्हीं दिनों पैदा हुआ था। स्वयं कन्फ्यूशियस की लिखी हुई 'चीन का इतिहास' नामक पुस्तक से पता चलता है कि 'शो' वंश का राज्य सामंत प्रथा पर टिका हुआ था। सारा राज्य छोटे छोटे टुकड़ों में बँटा हुआ था, जिसका इन्तिजाम स्थानीय अधिकारी करते थे। अपने इलाकों के लिये एक प्रकार से ये ही स्वतंत्र मालिक थे। ये अपनी खुद की सेना भी रखते थे। हाँ शाहंशाह द्वारा आमंत्रित होने पर इन्हें अपनी सेना लेकर केन्द्रीय राजधानी में जाना पड़ता था। स्वभावतः सामन्त शाही पर टिका हुआ संघ शासन दिन प्रतिदिन निर्बल होने लगा। सारी स्थिति दो शब्दों में बताई जा सकती थी :—

कन्फ्यूशियस के समय का चीन

"समूचे चीन का कोई राजा नहीं था—छोटे छोटे सामन्त अपने इलाकों में जैसा उचित समझते थे वैसा प्रबन्ध करते थे।"

'शो' वंश के अन्तिम दिनों में तो राजा नाम मात्र के लिये होता था। चीन के अनेक सामन्त उससे कहीं ज्यादा शक्ति रखते थे, और राजा पूर्णतया उन्हीं सामन्तों के हाथ में होता था। फल यह हुआ कि चीन में सर्वत्र सामन्तों ने लूट मचा रक्खी थी। चीन की जनता इनके अत्याचार से त्राहि त्राहि कर रही थी। समाज में अनेक कुरीतियाँ फैली हुई थीं। उदाहरण के लिये बहुविवाह का जोर था। स्त्रियों की दशा समाज में बड़ी शोचनीय थी—चारों ओर षड्यंत्र, मारपीट, दुराचार का बाजार गर्म था। धर्म के प्रति लोगों में गहरी उदासीनता फैली हुई थी, पाखंडियों का बोलबाला था।

चीन जिस समय एक महान संकट से होकर गुजर रहा था, कन्फ्यूशियस मानों इसे उस संकट से उबारने के लिये आया। कन्फ्यूशियस का जन्म ईसा से ५५० वर्ष पूर्व शान्टुंग प्रान्त के 'लू' नगर में हुआ। कन्फ्यूशियस बड़े उच्च घराने के थे। आप के पिता एक ऊँचे अफसर थे। ७० वर्ष की अवस्था में आप के पिता ने जब देखा कि उनके ९ लड़कियाँ थीं, और केवल एक पुत्र, सो भी पंगुल, तो ७० वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपना विवाह फिर किया। इस नये विवाह से कन्फ्यूशियस का जन्म हुआ। कन्फ्यूशियस जब तीन वर्ष के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। आप के पिता खाली हाथ मरे थे, अतः कन्फ्यूशियस का बचपन तंगी में ही बीता। कहते हैं कि बड़े होने पर किसी ने महात्मा कन्फ्यूशियस से पूछा कि आप ने इतनी विद्वत्ता कैसे प्राप्त की, तो आप ने उत्तर दिया कि "गरीबी से होकर गुजरने में मैंने समय का मूल्य आँकना सीखा और मेहनत करने की आदत डाली"।

कन्फ्यूशियस का जन्म

बचपन से ही उन्हें विद्याभ्यास का चाव था। किन्तु १९ वर्ष की अवस्था में तत्कालीन प्रथा के अनुसार उनका विवाह हो गया। विवाह के बाद ही जीविका का प्रश्न सामने आ खड़ा हुआ। निदान उन्होंने स्थानीय अफसर की मातहती में नौकरी कर ली। वह सरकारी पार्क और बगीचों के अध्यक्ष नियुक्त हुए। गरीबी के कारण उन्होंने इस प्रकार की निम्न श्रेणी की नौकरी स्वीकार की। किन्तु अपने काम को अत्यन्त परिश्रम के साथ उन्होंने निबाहा।

२२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक स्कूल खोला। इस स्कूल में वह वयस्क व्यक्तियों को शुद्ध आचरण, और गवर्नमेण्ट के सञ्चालन की शिक्षा देते। अपने

शिष्यों से वह जीवन की पहेलियाँ हल कराते। और उनके दिये हुए धन पर गुजर बसर करते। उनके शिष्यों की संख्या धीरे धीरे बढ़ने लगी।

दो वर्ष पश्चात् उनकी माता का भी देहान्त हो गया। पिता की समाधि के पास उसे भी दफ़नाया, और माँ की समाधि के ऊपर एक छोटा सा स्मारक भी बनाया। उन्होंने सोचा कि मैं देश विदेश भ्रमण करता रहूँगा, अतएव स्मारक रहेगा तो जब कभी इधर मेरा आना होगा, माँ की समाधि के दर्शन तो हो ही जायँगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि युवावस्था से ही देश पर्यटन का इरादा उन्होंने कर लिया था।

इसके बाद कन्फ्यूशियस चीन के प्राचीन इतिहास तथा उसकी संस्कृति का अध्ययन करते रहे। तीस वर्ष का अवस्था में वे कहते हैं "मैंने उन सब विषयों का खूब अध्ययन कर लिया है, जिन्हें पढ़ने का इरादा मैंने बचपन में किया था"। निदान कन्फ्यूशियस की प्रतिष्ठा तत्कालीन सभ्य समाज में खूब बढ़ गयी।

इन्हीं दिनों 'लू' नगर में विद्रोह हुआ। 'लू' के शासक को भागना पड़ा। कन्फ्यूशियस ने भी सहानुभूति वश उक्त सामन्त का साथ दिया। ये लोग पड़ोस के इलाके में अतिथि बन कर रहे। कन्फ्यूशियस को यहाँ के रीतिरिवाज न भाये, और वे फिर 'लू' लौट गये। इस बार लगभग १५ वर्ष तक 'लू' में वह रहे और अध्ययन में लगे रहे। राजकाज के कामों में भी वह परामर्श देते थे, किन्तु दरबार की गुटबन्दियों से वह बिल्कुल अलग रहते। उनकी प्रतिष्ठा खूब बढ़ी, और ५२ वर्ष की उम्र में वह न्याय विभाग के मन्त्री बना दिये गये। उनके दो शिष्य भी उन दिनों वहाँ पर अफ़सर थे। उन्होंने कन्फ्यूशियस को पूरा सहयोग दिया। कन्फ्यूशियस ने अपने सुप्रबन्ध से जुर्मों की संख्या एकदम कम कर दी। अपना कर्तव्य पूरा करने में उन्होंने अपूर्व साहस और निर्भीकता दिखाई। कई उच्च अफसरों को उनकी बेईमानी के लिये उन्होंने सजा दिया। सारांश यह कि राजकाज में उन्होंने एक क्रान्ति पैदा कर दी।

'लू' के बढ़ते हुए दबदबे को देख कर पास पड़ोस के सामन्त जलने लगे। उन लोगों ने आखिर एक चाल चली। सुन्दरी वेश्याओं के एक जत्थे को राज दरबार में विलासप्रियता बढ़ाने के उद्देश्य से भेजा। उनकी मंशा पूरी हुई।

सरकारी अफसर उनके मायाजाल में फँस गये। विलासप्रियता में डूबे हुए अफसर अब कन्फ्यूशियस की सलाह पर ध्यान न देते, दिनरात वे रँगरेलियों में पड़े रहते। क्षुब्ध होकर कन्फ्यूशियस ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, और अलग हो गये। वह समझते थे कि ऐसा करने से उन लोगों पर बहुत बड़ा असर पड़ेगा, वे लोग उन्हें मनाने आयेंगे, किन्तु उन्हें मनाने कोई न गया। उनकी अवस्था अब ५६ वर्ष हो चुकी थी, वह देश पर्यटन के लिये चल निकले।

गवर्नमेन्ट के सम्बन्ध में उनके विचार

अच्छी गवर्नमेण्ट पर कन्फ्यूशियस बहुत जोर देते थे। उनका कहना था कि गवर्नमेण्ट तभी अच्छी हो सकती है जब शासक शासक हो, मन्त्री मन्त्री हो, पिता पिता हो और पुत्र पुत्र हो, सब अपना कर्तव्य निबाहें। समाज में मुख्य पारस्परिक सम्बन्ध चार हैं—शासक और प्रजा, पति और पत्नी, पिता और पुत्र, और बड़े भाई और छोटे भाई। कन्फ्यूशियस का ख्याल था कि शासक के योग्य होने से प्रजा भी आज्ञाकारिणी बन जाती है। वह यह भी कहते थे कि जो शासक मेरी बातों को मानेगा और उनके अनुसार चलेगा, उसके राज्य में सर्वत्र समृद्धि छा जायगी, कोई दुःखी और भूखा न रह जायगा, सर्वत्र तृप्ति नजर आयेगी। उसने तो यहाँ तक भी कहा कि यदि एक वर्ष भी शासन कार्य मेरे हाथ में सौंप दिया जाय, तो उस राज्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर सकता हूँ।" किन्तु किसी सामन्त ने विलासप्रियता के सामने उनकी न सुनी।

कन्फ्यूशियस के शिष्य

इस वक्त तक कन्फ्यूशियस की प्रसिद्धि चारों ओर फैल चुकी थी। उनके शिष्यों की संख्या ३००० तक पहुँच गयी थी। इनमें कुछ तो हमेशा कन्फ्यूशियस के साथ रहते थे। उनकी एक एक बातों को वे नोट करते, वह कैसे खाते हैं, क्या खाते हैं, क्या कहते हैं, कैसे लेटते हैं, बिजली तड़पी तो उन्होंने क्या कहा, इत्यादि छोटी छोटी बातें भी उनके शिष्यों ने लिख डालीं। अपने शिष्यों से वह

बिना किसी संकोच के बात करते थे। उनके शिष्यों में से अनेक लोग ऐसे थे जो तत्कालीन विद्वानों में गिने जाते थे। इससे हम अन्दाज़ लगा सकते हैं कि कन्फ्यूशियस की लोग कितनी प्रतिष्ठा करते थे। 'लू' छोड़ने के बाद १३ वर्ष तक वह पर्यटन करते रहे। वह अनेक प्रान्तों में गये कि शायद कोई ऐसा शासक मिल जाय जो उनकी सम्मति से शासन कार्य चलाना स्वीकार करे, किन्तु किसी ने भी उनकी सलाह न मानी। कई एक ने उन्हें वचन भी दिया, किन्तु वे फिर विलासप्रियता में डूब गये।

इस लम्बी अवधि की यात्राओं में अनेक विचारों के लोगों के सम्पर्क में कन्फ्यूशियस आये, लेकिन सदैव उन्होंने अपनी निर्भीकता का परिचय दिया। लोगों ने उनके पीछे गुन्डे लगाये, फिर भी वह शान्त और गम्भीर रहे। एक बार कन्फ्यूशियस और उनके साथियों को खाना न मिलने पर मरने तक की नौबत आ गई, तो उनके शिष्यों ने पूछा कि "क्या सर्व श्रेष्ट मनुष्य को इतना कष्ट सहना पड़ता है ?" तो कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया 'अवश्य इतना कष्ट सहने पर भी वह सर्व श्रेष्ट पुरुष है, क्योंकि एक साधारण व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में अपना धैर्य्य और समतुल्यता खो बैठता है'।

अपनी यात्राओं में कन्फ्यूशियस अकसर 'त्यागियों' से मिले, जिन्होंने संसार के संघर्ष से भाग कर निर्जन प्रान्त में शरण लिया था। कन्फ्यूशियस इन्हें तिरस्कार भारी नज़रों से देखते थे। उनका कहना था कि "संसार में जो अशान्ति और कुप्रबन्ध फैला है, उसे दूर करना तो हर एक मनुष्य का कर्त्तव्य है, इनसे दूर भागना तो कर्त्तव्य से जी चुराना है, कायरपन है"। इन शब्दों में कन्फ्यूशियस के अपूर्व साहसिकता का हमें परिचय मिलता है।

देशपर्यटन के बाद जब कन्फ्यूशियस 'लू' लौटे तो उनकी अवस्था ६९ वर्ष की थी। पुराने सामन्त का पुत्र अब राजा था, उसका प्रधान सेनापति कन्फ्यूशियस के शिष्यों में से था, उसकी सलाह से नये सामन्त ने कन्फ्यूशियस से प्रार्थना की कि वह राज्य प्रबन्ध में उसकी सहायता करें और प्रधान मंत्री का पद स्वीकार करें। किन्तु कन्फ्यूशियस ने ऐसा करना स्वीकार न किया। जीवन के शेष दिन उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश देने में बिताए। इन्हीं दिनों उन्होंने साहित्य का भी अध्ययन किया।

उनकी मृत्यु ईसा से ४७८ वर्ष पूर्व हुई। कहा जाता है कि एक दिन प्रातःकाल वह उठे, हाथ में लाठी टेकते हुआ गुनगुनाने लगे, "विशाल पर्वत के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं, मजबूत शहतीर भी टूट ही जाती है, बुद्धिमान व्यक्ति भी क्षय को प्राप्त होगा"। उनका गुनगुनाना सुन कर उनका एक शिष्य दौड़ा हुआ उनके पास गया। कन्फ्यूशियस ने उससे कहा 'कोई शासक मुझे अपना मंत्री बनाना नहीं चाहता। मेरे मरने का समय आ गया है।' वह बिस्तर पर पड़ गये और सातवें दिन उनका देहान्त हो गया। मृत्यु के समय उनका कोई निजी सम्बन्धी उनके पास न था। उनकी पत्नी पहले ही मर चुकी थी। मरते समय उन्होंने ईश प्रार्थना भी न की।

मृत्यु के उपरान्त बड़ी शान और शौकत के साथ उनके शव को समाधि दी गई। कितने शिष्य तो उनकी समाधि के पास झोपड़ी बना कर रहने लगे थे। कन्फ्यूशियस की मृत्यु का समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। जीवन में जिस व्यक्ति की चीन ने कदर न की, उसी की मृत्यु पर प्रशंसा के गाने गाये गये। उनकी विचार धारा का स्रोत यकायक सम्पूर्ण चीन में बह निकला। आज २४०० वर्ष के बाद भी वह स्रोत हरा है।

साहित्य पर कन्फ्यूशियस का प्रभाव

कन्फ्यूशियस ने स्वयं अपने उपदेशों को लेख बद्ध नहीं किया। वह कहते थे "मैं सृजन करने नहीं आया हूँ वरन् मैं अपने विचारों को औरों तक पहुँचाने आया हूँ"। स्वयं उन्होंने इस बात का कभी दावा नहीं किया कि ईश्वरीय प्रेरणा या इलहाम से ये उपदेश उन्हें मिले हैं। वह कहते थे "मैं ज्ञान लेकर पैदा नहीं हुआ, मैं तो ज्ञान का खोजी हूँ"। तदनुसार वह प्रायः प्राचीन पुस्तकों में ज्ञान ढूँढ़ते फिरते। कन्फ्यूशियस के ज़माने में भी चीन में प्राचीन साहित्य पर्य्याप्त मात्रा में था। किन्तु प्राचीन लेखकों की कृतियाँ नष्ट प्राय हो रही थीं। कन्फ्यूशियस का ध्यान इस ओर गया, उन्होंने फौरन इन पुस्तकों का पुनरोद्धार किया। उनका संकलन किया, उन पर स्वयं टीका टिप्पणी की। (प्राचीन इतिहास, कविता और

सामाजिक रूपरेखा पर वह अक्सर व्याख्यान देते थे) कन्फ्यूशियस ने 'ऐतिहासिक पुस्तक' की भूमिका लिखी थी। इसके अतिरिक्त कन्फ्यूशियस ने प्राचीन कविताओं का संग्रह किया, तथा 'चीन के प्राचीन रस्म व रिवाज' नाम की किताब का भी संग्रह लिखा था। इस संग्रह में खूब टीका टिप्पणी उन्होंने की थी। कन्फ्यूशियस की स्वयं लिखी हुई पुस्तक जो अब भी चीन में मिलती है, वह है 'लू का इतिहास'।

जैसा कि हमने देखा है कि कन्फ्यूशियस राज्य के कुप्रबन्ध को न सुधार सके। उन्हें ऐसा करने का किसी ने मौका ही न दिया। किन्तु व्यक्तिगत आचरण के सुधारने का उन्होंने प्रशंसनीय प्रयत्न किया। उनके उपदेशों में सब से उत्तम उपदेश था 'जिस बात को तुम नहीं चाहते कि लोग तुम्हारे संग करें, उसे तुम भी औरों के संग न करो" वह इस पर भी बहुत जोर देते थे कि उच्च पद पर आसीन व्यक्तियों को अपना आचरण निर्मल और शुद्ध रखना चाहिये, ऐसा होने से उस पदाधिकारी के नीचे जितने लोग होते हैं, उनके आचरण में भी निर्मलता आती है। कन्फ्यूशियस की बहुत सी कहावतें प्रसिद्ध हैं। कुछ हम नीचे दे रहे हैं:—

कन्फ्यूशियस के उपदेश

'एक गरीब आदमी जो चापलूसी नहीं करता और धनी व्यक्ति जो मद से चूर न हो, हमें प्रायः मिल जाते हैं। किन्तु गरीब आदमी, जो अब भी प्रसन्नचित्त हो, और धनी व्यक्ति जो शिष्ठाचार अब भी निबाहता हो, विरले ही मिलते हैं'।

'ज्ञान जिस पर मनन न किया गया हो व्यर्थ है, और ज्ञान के बिना मनन करना खतरनाक है'।

'सतर्क मनुष्य गल्तियाँ बहुत कम करता है'।

हम पहले कह चुके हैं कि कन्फ्यूशियस ने कभी यह नहीं कहा कि उसे ईश्वरीय प्रेरणा मिली है। उनके उपदेशों में बाह्य जीवन के सुखी बनाने का संदेश हम पाते हैं। मनुष्य और समाज के प्रति हमारे कर्त्तव्य क्या हैं, इन्हीं गुत्थियों को उन्होंने सुलझाने का प्रयत्न किया। मनुष्य ईश्वर की प्रतिमूर्त्ति है। मनुष्य के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन से विमुख होने के अर्थ हैं ईश्वर के प्रति कर्त्तव्यच्युत होना। कन्फ्यूशियस के उपदेशों में हम चार चीजों का वर्णन कहीं भी नहीं पाते—चमत्कार पूर्ण अद्भुत् चीजें, बहादुरी के काम, विद्रोह, और भूत प्रेत तथा मृत आत्माएँ।

कन्फ्यूशियस का धर्म और उनकी फिलासफी

वह प्राचीन रीति रिवाज के अनुसार मृत आत्माओं के प्रति सभी रस्मों को पूरा करते, किन्तु एक बार प्रश्न किये जाने पर उन्होंने उत्तर दिया। "मनुष्य को मनुष्य के प्रति अपने कर्त्तव्य पूरे करने चाहियें, मृत आत्माओं के झंझट में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। मनुष्य के ही प्रति जब तुम अपने कर्त्तव्य नहीं निबाह सकते, तो मृतात्माओं के लिये तुम क्या कर सकते हो" ? कन्फ्यूशियस से पूछा गया "मरने के बाद मनुष्य की आत्मा कहाँ जाती है" ? उन्होंने उत्तर दिया "जब जिन्दगी के बारे में ही हम इतना कम जानते हैं, तो मृत्यु के बारे में सब बातें कैसे जान सकते हैं"।

इस प्रकार हम देखते हैं कन्फ्यूशियस के विचार सांसारिक वस्तुओं तक ही सीमित थे। उन्होंने मनुष्य को समाज का अंग माना, उसे खूब ऊँचा स्थान दिया, किन्तु समाज से बाहर, मृत्यु के बाद उसका क्या होता है, इस प्रश्न पर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया। पुण्य और पाप के सम्बन्ध में ईश्वर क्या करता है, इस पर भी ध्यान नहीं दिया, वरन अच्छे और बुरे कामों का असर समाज पर पड़े बिना नहीं रहता, इस पर खूब जोर दिया। कन्फ्यूशियस ने बहुविवाह की कुप्रथा पर भी ध्यान नहीं दिया, और न समाजिक रूपरेखा को बदलने की ओर ही ध्यान दिया। प्राचीन और पुरातत्व की ओर ही वह देखते रहे, नवीनता का संदेश वह न दे सके। चीन में फिर भी सर्वत्र उनका मान है। प्रगतिशील विचारों के लोग कन्फ्यूशियस की रूढ़िवादिता से घबराते हैं। उनका ऐसा सोचना बहुत अंशों में ठीक भी है।

मार्शल—चियांग-काई-शेक

(कुंवर माधवेन्द्र प्रताप नारायण सिंह)

किसी देश के राजनैतिक जीवन का दृश्य उतना ही मनोरंजक और शिक्षा-पूर्ण होता है जैसा कि उसके कार्यसञ्चालकों का जीवन। क्योंकि इन दोनों वस्तुओं में एक घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। क्रान्ति के समय अपने देश और जाति के लिये अपनी जान को अपनी हथेली पर रख कर काम करने वालों का जीवन और भी नियन्त्रित हो जाता है। चीन को बीसवीं शताब्दी का इतिहास डा० सनयाटसेन (Dr. Sunyat-sen) और मार्शल चियांग काई शेक (Marshal Chiang-kai-shek) के अपूर्व साहस और राजनीतिकता का एक प्रशंसनीय कारनामा है।

मार्शल चियांग-काई-शेक।

चीनी प्रजातन्त्र के संस्थापक ने चीनियों के राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन पर वह प्रभाव डाला है जिसकी तुलना विल्सन, लेनिन और महात्मा गांधी के देशव्यापी प्रभाव से की जाती है। जिस योग्यता, कार्यपटुता तथा महान शान्ति के साथ जनरल चियांग-काई-शेक ने अपनी जाति की रक्षा की है वह अद्वितीय है। उसी की बदौलत वह आज चीन के समाज में अग्रगण्य हैं। और अपने उन गुणों से जिनसे कि इन्होंने लड़ाई के मैदानों में और शासकों की गद्दी पर बराबर दृढ़ता, चतुरता तथा कार्यपटुता के साथ काम किया है वह 'चीन की बुद्धि' कहे जाते हैं।

डा० सन (Dr. Sun-yat-sen) की मृत्यु के पश्चात् जनरल चियांग ने उनके कार्यक्रम को सँभाला और "जाति के तीन सिद्धान्त" और डा० सन की इच्छाओं की पूर्ति के हेतु इन्होंने जाति को ऊँचा उठाने का बीड़ा लिया। उन स्वार्थी लोगों के चंगुलों से, जो कि भिन्न भिन्न भागों में शासक बने बैठे थे और जिन्हें अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और किसी बात का ध्यान न था, अपने देश को उबारने का प्रयत्न करते हुए दस वर्ष में उन्होंने समस्त चीन को एक सूत्र में बांध दिया। इन्होंने देश की आर्थिक तथा सामाजिक दशाओं को सुधारा और इन कार्यों की बदौलत वह न केवल जनता का विश्वासपात्र बने, बल्कि अन्य बाह्य शक्तियों के प्रशंसा-पात्र भी।

महान् व्यक्ति प्रायः मध्यम-श्रेणी से आते हैं, इसका इतिहास साक्षी है। जनरल चियाँग-काई-शेक भी मध्यम श्रेणी से आते हैं। सन् १८८६ ई० के अक्तूबर महीने में चिक्यांग (Chekiang) के फेंग्हुवा (Fenghua) नामक स्थान पर एक मध्यम वर्ग के वंश में पैदा हुए थे। थोड़ी ही उम्र में इनके पिता का देहान्त हो गया, मगर इनकी माता ने जो एक सुयोग्य रमणी थीं इनको उचित शिक्षा दी। माता ने ही इन्हें आत्मविश्वास, आत्मसमर्पण और देशसेवा का पाठ पढ़ाया। जैसा कि इन्होंने स्वयं ३१ अक्टूबर सन १९३६ को अपनी पचासवीं सालगिरह के अवसर पर कहा था, "......मैं दो बातों पर सदैव विचार करता रहता हूँ और उन्हीं को सोचा करता हूँ—कि जब तक हमारे देशवासी आफत में फँसे हैं, तब तक मैं समझता हूँ मैंने अपनी माता की इच्छा की पूर्ति नहीं की। जब तक देश को मुक्ति नहीं मिल जाती तब तक अपने आप को मैं इसके लिये जिम्मेदार समझता हूँ।"

सत्रह वर्ष की उम्र में यह फौज के इन्फैंट्री स्कूल में भर्ती हुए और वहाँ से निकल कर टोकियो मिलिटरी एकेडेमी में चार वर्ष तक फौजी शिक्षा ग्रहण की। अभी जब कि यह जापान ही में थे अपना जीवन क्रान्ति के लिये अर्पण कर दिया और डा० सन की स्थापित की हुई टुंगमेन्घुई (Tungmenghui) सोसाइटी के सदस्य हो गये और चीन में प्रजातन्त्र की स्थापना का स्वप्न तभी से देखने लगे।

इस तरह ज्योंही सन १९११ ई० में क्रान्ति आरम्भ हुई यह चीन में आये और शंघाई में सेनापति बने। इन्होंने शंघाई को मंचू लोगों (Manchus) से ले लिया।

इन विजयों के पश्चात् क्रान्ति सफल होने पर यह दस वर्ष तक इन सब कार्यों से अलग रहे और इस प्रकार सन् १९२३-२४ ई० से इनके जीवन का एक दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है और यह फिर कैन्टन के क्रान्तिकारी आन्दोलन में हिस्सा लेते हैं।

डा० सनयात सेन को इनकी योग्यता ने अपनी ओर आकर्षित किया और क्रमशः यह स्टाफ अफसर से ह्वाम्पोआ मिलिटरी एकेडेमी के सभापति नियुक्त हुये; और जब डा० सन के विरुद्ध उनके एक साथी ने बलवा किया तो मार्शल चियांग ने अपनी एक छोटी सी फौज द्वारा उस बलवाई को हरा दिया और इस तरह अपनी योग्यता तथा वीरता का परिचय दिया। अपनी इस प्रकार की बहादुरी द्वारा सन १९२५ ई० तक इन्होंने क्वांगटंग (Kwangtung) को कोमिंगटांग दल के अधीन कर लिया, और सन् १९२६ ई० में इन्होंने देश को छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित होने से बचाया। सारा देश स्वार्थी शासकों द्वारा चूसा जा रहा था, और नष्ट व बर्बाद हो रहा था—उन सब से बचाने के लिये चीन का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन्होंने अपने प्रयत्न द्वारा कोमिंगटांग के अधीनस्थ किया। उसी समय से मार्शल चियांग चीन देश के चतुर नाविक बने।

वास्तव में चीन में एकता पैदा करने का श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है, तो चियांग-काई-शेक को।

इन्होंने फौज की शक्ति से देश को एकता के सूत्र में नहीं बाँधा, किन्तु न्याय और शान्ति की शक्ति से, अपनी योग्यता तथा कार्यपटुता के बल से। किसी ने कहा है, "केवल छः महीने फौज में काम करने से मनुष्य जंगली हो जाता है। ठीक है, परन्तु उस मनुष्य को हम कितना बड़ा कहेंगे जिसको लड़कपन से ही फौजी शिक्षा मिली, फौजी काम ही जिस के जीवन का अधिकतर भाग रहा, और इस पर भी वह-जंगली नहीं निकला, उसमें देश प्रेम तथा कर्तव्य शेष रहे ? मार्शल चियांग-काई-शेक के मस्तिष्क का जो विकास हो रहा था वह न तो सिकुड़ा और न उसकी वृद्धि ही रुकी। उसने संसार को दिखा दिया कि यद्यपि वह एक फौजी आदमी है मगर उसने अन्य शक्तियों को तिलांजलि नहीं दिया है। उसने संसार को दिखा दिया कि जबान और शब्दों में वह शक्ति है कि वह इस्पात को भी भी मोम बना सकती है। चियांग-काई-शेक की बड़ाई इस बात में है कि इन्होंने चीन से गृह कलह दूर किया। सारे चीन को एकता के सूत्र में बाँधा। किसी ने ठीक कहा है, "अगर चीन के इस काल का इतिहास लिखा जायगा तो उसमें एक सुनहरा पृष्ठ होगा जिसमें लिखा जायगा कि चीन की राजनैतिक एकता, आत्मशक्ति, वैयक्तिक योग्यता के बल पर हुई, फौज के बल पर नहीं। वह पुरुष जो ऐसा करने में समर्थ हुआ, निस्सन्देह हमारी प्रशंसा का पात्र है। ये ही कारण हैं जिनकी वजह से चियांग-कई-शेक के लिये चीन निवासियों के दिल में भक्ति है, श्रद्धा है और है प्रेम।

पूर्ण जातीय कार्यक्रम ने, जो कि आम जनता की शिक्षा के विषय में उनकी आर्थिक समस्या के सुलझाने के विषय में, तथा उनकी एकता तथा संगठन के विषय में थे, चीन के अमन चैन का मार्ग साफ किया। वहाँ के आर्थिक सुधार, स्वास्थ्योन्नति, व्यापार मार्ग के सुधार और उनमें वृद्धि और नये होने वाले आविष्कारों का प्रोत्साहन आदि कार्यों ने मार्शल चियांग-काई-शेक के शासन को बहुत ही महत्वपूर्ण बना दिया।

चियांग-काई-शेक का एक शासनकर्ता तथा 'पब्लिक मैन' के रूप में बहुत नाम है, मगर एक

साधारण मनुष्य की हैसियत से इन्हें लोग बहुत कम जानते हैं। वास्तव में इन्होंने सिवा साहस भरे तथा देश सुधार के कामों के और किसी काम के बारे में सोचा भी नहीं। यही नहीं, जैसा कि हर एक शासक के लिए आवश्यक होता है कि वह निरन्तर अध्ययन करता रहे, चियांग-काई-शेक भी डा० सन (Dr. Sun) की पुस्तकों, तथा तर्क शास्त्र, फिलासफी राजनीति, भूगोल, सामाजिक और फौज सम्बन्धी पुस्तकों का बराबर अध्ययन करते रहे हैं।

उन्होंने कूमिंगटांग (Kuomingtong) के लिए अपने को सदा के लिए समर्पित कर दिया है, साथ ही साथ अपने शिक्षा सम्बन्धी और सामाजिक कार्यक्रम में अपनी जातीयता और देश प्रेम का बहुत बड़ा ध्यान रक्खा है। वह लोगों की दैनिक आय को विस्तृत आर्थिक व्यापार मार्ग तथा सामाजिक सुधारों के बल पर बढ़ाना चाहते हैं।

१९२६ में नेशनल गवर्नमेण्ट कायम होने के बाद से देश का शासन सूत्र कूमिङ्गटांग पार्टी के हाथ में आया। इस पार्टी के सर्वेसर्वा चियांग-काई-शेक हैं। खेद की बात है कि यह पार्टी क्रमशः चीन के धनिक वर्ग के प्रभाव में आ गई। नतीजा यह हुआ कि नेशनल गवर्नमेण्ट को यह बात बुरी मालूम हुई कि किसान और मजदूर अपना संगठन करें। किसानों के संगठन का समर्थक साम्यवादी दल नेशनलिस्ट सरकार की आखों में खटकने लगा। जेनरल चियांग-काई-शेक को अपने दल के निर्णय के अनुसार साम्यवादी दल का दमन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। लगातार ८ वर्ष तक कोशिश करने पर भी साम्यवादी दल कुचला न जा सका। दिसम्बर १९३६ में शान्सी प्रान्त में साम्यवादियों के दमन के लिये स्वयं चियांग-काई-शेक गये, किन्तु वहाँ आप साम्यवादियों के शिविर में बन्दी हो गये। फिर आप की पत्नी मैडम चियांग-काई-शेक के प्रयत्न से दोनों पक्ष के बीच समझौता हुआ, जिसके अनुसार चियांग-काई-शेक ने साम्यवादियों के संग एक संयुक्त मोर्चा कायम करने की बात स्वीकार की। इस तरह देश के दो प्रभावशाली दलों ने जापान के विरुद्ध अपना मोर्चा दृढ़ किया। साम्यवादी दल ने अपनी सुसंगठित 'लाल सेना को' चियांग-काई-शेक के नायकत्व में दी।

चीन जापान के इस युद्ध में इस संयुक्त मोर्चा के कायम होने से चियांग-काई-शेक की योग्यता और राजनीतिज्ञता के प्रदर्शन के लिये पूरा मौक़ा मिल सका है। यह ठीक है कि जापान के पास नूतनतम ढंग पर सञ्चालित सेना है, किन्तु फिर भी चीन के लिये हतोत्साह होने की जरूरत नहीं है। उसके पास भी चियांग-काई-शेक जैसे देशभक्त बहादुर हैं*।

* अमृत बाज़ार पत्रिका में प्रकाशित एक अँग्रेज़ी लेख के आधार पर —सम्पादक

मैडम—चियांग-काई-शेक

चीन के स्वातन्त्र्य-संग्राम में व्यस्त जेनरल चियांग-काई-शेक की अर्द्धाङ्गिनी आज चीन की रक्षा करने में जी जान से जुटी हुई है। आज वह चियांग-काई-शेक का दाहिना हाथ बनी हुई है।

मैडम चियांग काई शेक का नाम विवाह के पूर्व कुमारी मिलिंग-सुंग था। इनके पिता गरीबी के कारण अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में जीवन यापन के लिये चले गये थे। वहाँ पर उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। अमेरिका में उन्होंने खूब धन कमाया। आप के कई सन्तानें हुईं। अपनी लड़कियों को आप ने उच्च शिक्षा दी, और बड़े उच्च घरानों में उनकी शादी की। सबसे बड़ी लड़की ए-लिंग की शादी डा० सनयातसेन से हुई और छोटी लड़की कुमारी मिलिंग-सुंग की शादी जेनरल चियांग-काई-शेक से हुई। कुमारी मिलिंग ने अमेरिका के कालेज से ग्रेजुएट की डिग्री प्राप्त की है।

मैडम—चियांग-काई-शेक

मैडम चियांग-काई-शेक एक चरित्रवान तथा आदर्श महिला हैं। आप निष्ठा और सच्चरित्रता में विश्वास रखती हैं। विवाह के बाद अपने घर में उन्होंने सादगी और सदाचार का एक अपूर्व वातावरण उत्पन्न किया। शराब, तम्बाकू, अफीम आदि दुर्व्यसनों का प्रवेश एक दम रोक दिया। जेनरल चियांग-काई-शेक ने भी तम्बाकू आदि का त्याग कर दिया।

मैडम-चियांग-काई शेक का कार्य्यक्षेत्र घर तक ही सीमित न रहा। उसने सारे देश में 'नव-जीवन आन्दोलन' [Newlife Movement] इन्हीं महत्वाकांक्षाओं को लेकर चलाया। यह आन्दोलन राजनैतिक सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। स्त्रियों की उन्नति के लिये इस आन्दोलन में विशेष महत्व प्रदान किया गया है। स्त्रियों के लिये आठ कर्त्तव्य इस आन्दोलन में निर्धारित किये गये हैं। ये कर्त्तव्य हैं, भक्ति, पवित्रता, प्रेम, पितृभक्ति, पतिव्रत धर्म, शान्तिप्रियता, न्यायप्रियता और निर्भीकता।

साथ ही स्त्रियों के लिये निम्नलिखित वस्तुएँ आवश्यक हैं:—

बदन को ढकने वाले वस्त्र पहनना, सड़क पर पाजामे पहन कर न निकलना, चुम्बन न करना, सिगरेट कभी न पीना और न अफीम का प्रयोग करना।

इस आन्दोलन के आरम्भ होते ही चीन में मानों एक तूफ़ान सा आ गया। जगह जगह सिपाही यह देखने के लिये नियुक्त किये गये कि चीनी स्त्रियाँ पर्य्याप्त मात्रा में वस्त्र पहने हैं या नहीं? मर्द और स्त्रियों के स्नान के स्थान अलग अलग बनाये गये। चरित्र की निर्मलता पर खूब जोर दिया गया। दर्ज़ियों की दूकानों पर तथा पोशाक बेचने वालों के यहाँ राज कर्मचारी यह देखने के लिए तैनात थे कि किस प्रकार के कपड़े यहाँ तैय्यार किये जाते हैं। फैशन की लहर में बहने वाली युवतियों को एक कड़ी चेतावनी मिली। चीन के नैतिक उत्थान का सारा श्रेय मैडम चियांग-काई-शेक को मिलना चाहिये। इसमें दो मत तो हो ही नहीं सकते।

लड़ाई छिड़ने के पहले तक मैडम चियांग-काई-शेक अपने पति के लिये व्याख्यान तैय्यार करतीं, उनकी चिट्ठियाँ टाइप करतीं और उन्हें राजकीय मामलों में परामर्श भी देतीं। मैडम चियांग-काई अंग्रेजी और फ्रेन्च भी बखूबी जानती हैं, अतः जेनरल चियांग-काई-शेक से जब कोई अँग्रेज या फ्रेन्च मिलने

आता है, तो आप ही उनके लिये दुभाषिये का भी काम करती हैं।

लड़ाई छिड़ने के साथ ही मैडम चियांग काई का उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। चीन के स्वातन्त्र्य संग्राम में आप भी पूरा सहयोग दे रही हैं। वायुयान सेना विभाग की देख रेख आप ही कर रही हैं। इस विभाग की आप मंत्री हैं।

चीन के सम्बन्ध में मैडम चियांग-काई-शेक ने अनेक पुस्तकें भी अँग्रेजी भाषा में लिखी हैं। आप की पुस्तक 'China At Cross Roads' बड़ी उच्च श्रेणी की है। इस पुस्तक में चीन के सामाजिक जीवन का आप ने बहुत ही सजीव चित्र खींचा है। इस पुस्तक में आपने अनेक समस्याओं का समाधान किया है। चीन में पश्चिमी सभ्यता अपनी जड़ क्यों न जमा सकी? चीन निवासी युद्ध को घृणा की दृष्टि से क्यों देखते हैं? इन सभी प्रश्नों पर आप ने प्रकाश डाला है।

इस वर्तमान संकटावस्था में चीन के लिये मैडम चियांग-काई-शेक अन्य देशों में सहायता के लिये पुस्तकों और समाचार पत्रों के द्वारा आन्दोलन कर रही हैं। आये दिन मैडम चियांग-काई-शेक की ओर से विज्ञप्तियाँ प्रकाशित होती हैं। इङ्गलैण्ड में चीन सहायक संस्था हाल में स्थापित हुई है। मैडम चियांग-काई-शेक का इस संस्था से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस संस्था की ओर से युद्ध स्थल के घायल सैनिकों की मरहम पट्टी के लिये हर प्रकार की सामग्री इकट्ठी की जाती है।

शंघाई के निकटवर्त्ती प्रदेशों में युद्ध के कारण मुसीबत में पड़े हुए स्त्रियों, बच्चे तथा बूढ़ों के लिये लगभग २० टन खाद्य सामग्री तथा वस्त्रादि इङ्गलैण्ड से उक्त संस्था ने मैडम-चियांग-काई-शेक के पास भेजा है। आप की कार्य्यक्षमता देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है! अभी आफिस में हैं तो अभी क्षण भर बाद रणस्थली में वायुयान द्वारा पहुँच गयीं। चीन देश की इस साहसी महिला को रण-चण्डी का अवतार कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

साल भर हुए शान्सी में जब जेनरल चियांग-काई शेक साम्यवादियों के हाथ बन्दी हो गये थे, तो आप फौरन वायुयान द्वारा वहाँ पहुँचीं, और साम्यवादी नेताओं से बात चीत कर उभय पक्ष में समझौता कराया, और जेनरल चियांग-काई-शेक को छुड़ा कर साथ ले आईं। चीन की वर्त्तमान राजनीति में मैडम चियांग-काई-शेक का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें किसे सन्देह हो सकता है?

हुइ-शी

चीन के गांधी

हुइ-शी चीन की महान आत्माओं में से हैं। जिस प्रकार भारतवर्ष में महात्मा गांधी चौबीसों घण्टे भारत के हित साधना में लीन रहते हैं, उसी प्रकार डा० हुइ-शी भी चीन की उन्नति के लिये दिन रात परिश्रम करते रहते हैं।

अमेरिका में आपने शिक्षा ग्रहण की, पश्चिमी सभ्यता और विचारधारा का खूब ध्यान पूर्वक मनन किया। आप ने देखा कि पश्चिम के यथार्थवाद में ही चीन की उन्नति निहित है। पूर्वीय विचारधारा और फिलासफी में 'विराग' और अकर्मण्यता को अधिक प्रोत्साहन मिलता है, उसे हुइ-शी ने अच्छी तरह भाँप लिया था। अतएव आपने प्रण किया कि वह चीन में नई विचारधारा के प्रवर्त्तक बनेंगे, चीन को वह कर्मशील बनायेंगे। हुइ-शी चीन में आशा और नवजीवन का सन्देश ले कर आये।

चीन की प्राचीन सभ्यता से हुइ-शी विमुख हो गये हों, सो बात नहीं है। वे चाहते हैं कि चीन की प्राचीन कला और वर्त्तमान जीवन को सम्पर्क में लाया जाय—चीन की प्राचीन कला एक अलग सी अछूती, अजायब घर की वस्तु न बनी रह जाय। डा० हुइ-शी चीन के अतीत से प्राणशक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। इन्होंने चीन के शानदार अतीत का भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया है—हर एक बातों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है। अतीत काल की वस्तुओं को महत्व तो यह देते हैं, किन्तु उसकी उतनी ही इज्जत की जाय जितनी अतीत काल में उसकी इज्जत थी, इस विचार से वह सहमत नहीं हैं। प्राचीन चित्रकला, चीनी बर्तनों में मीनाकारी के काम, इन सब की प्रशंसा करने के लिये वह राजी हैं, किन्तु उनका कहना है, आधुनिक युग में ज़रूरत इस बात की है कि चीन कुछ और कर दिखाये—अन्तर्राष्ट्रीय मैदान में चीन तभी टिक सकता है जब आधुनिक युग की चीजें वह पैदा कर सके। पश्चिम के राष्ट्रों के संग प्रतियोगिता में चीन को भी भाग लेना है—अलग अतीत की गोद में पड़े रहने से तो हम कोसों दूर पीछे छूट जायँगे। अतीत के सामाजिक और धार्मिक बन्धनों को तोड़ कर चीन को स्वतन्त्रता पूर्वक आगे बढ़ना है। अन्तर्मुखी होने से इसका काम नहीं चलने का—कूप-मण्डूक को गुजर इस बीसवीं सदी में नहीं हो सकती।

१८९८ का विद्रोह असफल क्यों रहा? इसलिये कि चीन की जनता रूढ़ियों की शृङ्खला में बुरी तरह से जकड़ी हुई थी—शान्ति, धर्म और सभ्यता के झूठे नारे लगा कर चीन की जनता को स्वार्थी लोगों ने धोके में डाल रक्खा—फल यह हुआ कि चीन विदेशियों के शिकंजे में और भी जकड़ गया। डा० हुइ-शी इसी लिये बड़े बेचैन थे—वे चाहते थे कि रूढ़िवादिता से चीन को जल्द से जल्द छुटकारा मिले।

चीन की प्राचीन शिक्षा पद्धति कुछ इने गिने धनिकों और विद्वानों के काम की चीज़ है। भाषा क्लिष्ट और दुरूह। डा० हुइ-शी ने देखा कि चीन की साधारण जनता इस शिक्षा पद्धति से कोई लाभ नहीं उठा सकती। और साधारण जनता को शिक्षित बनाये बिना चीन की सामाजिक या राजनीतिक उन्नति के स्वप्न देखना एक भारी भूल होगी। अतएव पहला काम जो हुइ-शी ने किया, वह था भाषा को सरल और सुगम्य बनाना। इसके ये अर्थ नहीं है कि चीन की प्राचीन संस्कृति की ओर से लोगों का ध्यान हट गया। लेकिन इतना ज़रूर है कि अब विशेषज्ञ लोग ही प्राचीन शिक्षा पद्धति ग्रहण करते हैं। डा० हुइ-शी इस बात से भी वाकिफ हैं कि आधुनिक काल में चीन के लोग धर्म के पचड़े में ज्यादा नहीं पड़ते। वे अपने दैनिक जीवन में धर्म को अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं देते। ईसाई मिशनरी लोग गाँवों में प्रचार कार्य करते घूमते हैं। बच्चों को शिक्षा देते हैं—गाँव का कृषक देखता है कि ईसाई होने से पढ़ने लिखने की सुविधा मिलेगी। उसके बच्चों को बपतिस्मा मिलता है। स्कूल की शिक्षा पाने पर उसके लड़के स्वभावतः

औरों से अधिक बुद्धिमान होते हैं। तिजारत और अन्य पेशों में वह ज्यादा धन कमा सकते हैं। इस तरह ईसाई धर्म का आलिंगन लोग ऐश्वर्य और धन के लालच से करते हैं—कुछ धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं। हुइ-शी ने देखा कि चीन की जनता में धर्म और उच्च सिद्धान्तों के प्रति एक विचित्र उदासीनता भरी हुई है।

थोड़े से पढ़े लिखे लोग बन्ध्या फिलासफी में दिन रात पड़े रहते। उन्हें परवाह न थी कि उनकी फिलासफी से चीन की निरीह जनता का कहाँ तक उपकार हो सकता है—उनके ज्ञान से चीन में कहाँ तक जागृति उत्पन्न की जा सकती है। नतीजा यह हुआ कि धर्म कुछ थोड़े से मूर्ख और धोकेबाज़ पाखण्डियों के हाथ में चला गया—मन्दिरों में केवल वे ही लोग जाया करते जो शकुन निकलवाना, या शायत मालूम करना चाहते। यही नहीं, इन मुट्ठी भर विद्वानों ने अपने यहाँ के महान पुरुषों की जीवनियाँ तक नहीं लिखीं—आने वाली पीढ़ी के लिये पथ प्रदीप का काम करने वाली जीवनियों से आज का चीन वञ्चित है। डा० हुइ-शी के मस्तिष्क में ये ही विचार दिन रात चक्कर लगाते रहे, और चीन की इन्हीं समस्याओं को सुलझाने के लिये उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लगाने का प्रण कर लिया। नाटक, ग्राम्यगीत इत्यादि सभी चीजों के प्रति चीन के दार्शनिक उदासीन रहे। इस तरह ये चीजें भी पुराने पेशेवर नाचने-गाने वालों के हाथ में चली गईं। कला के विकास की जगह उसकी अवनति ही होती गई। डा० हुइ-शी ने चीन की जनता का ध्यान उक्त प्रश्नों की ओर आकर्षित किया।

हुई-शी ने देखा कि चीन की दशा आज शोचनीय है। चारों ओर दारिद्र्य छाया हुआ है। कला और सभ्यता की ओर ध्यान देने के पहले ज़रूरी है कि जनता को रोटी का सवाल हल किया जाय। अतएव हुइ-शी ने इस बात पर सब से ज्यादा ज़ोर दिया कि कला और प्राचीन संस्कृति का अध्ययन करना आज हमारे लिये मूर्खता होगी। हमें विज्ञान के नूतनतम आविष्कारों की सहायता से चीन को समृद्धिशाली बनाना है। नंगे और भूखे चीननिवासियों की आवश्यकताओं को पहले पूरा करना होगा।

डा० हुइ-शी एक यथार्थवादी हैं। इसी कारण कला और प्राचीन संस्कृति के प्रति इस तरह की विमुखता दिखा रहे हैं। इसके यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि वे चीन की कला और संस्कृति की उन्नति नहीं चाहते किन्तु वे इस बात को महसूस करते हैं कि चीन आज आर्थिक संकट में पड़ा हुआ है, विदेशी ताक़तें उसका गला घोंट रही हैं। चीन को और समूचे चीन को एक साथ उठ खड़ा होना है।

डा० सनयात सेन

डा० सनयात सेन को यदि हम चीन का निर्माता कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। चीन की वर्तमान प्रजातन्त्र शासन प्रणाली डा० सनयात सेन के ही अथक परिश्रम का फल है।

इनके पिता छोटी हैसियत के व्यक्ति थे और इन्होंने इसाई धर्म की दीक्षा ले ली थी। डा० सनयात सेन का जन्म १८६७ ई० में हुआ था। बचपन से ही ये बड़े प्रतिभाशाली और होनहार थे। आपने हांग-कांग के मेडिकल कालेज से डाक्टरी की परीक्षा १८९४ ई० में पास की थी। जिन दिनों आप मेडिकल कालेज में शिक्षा पा रहे थे आप क्रान्तिकारियों के संसर्ग में आये और गुप्त रूप से उनके साथ ग़ैर कानूनी कार्यवाहियों में भाग भी लेते रहे—१८९५ ई० में एक क्रान्तिकारी षड्यन्त्र में आपका भी हाथ था। उस षड्यन्त्र में आपके अन्य साथी पकड़े गये और उन्हें फाँसी की सजा मिली। भाग्यवश आप बच गये।

स्वदेश में रहना आपके लिये खतरे से खाली न था अतएव इटली के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता मेज़नी की भाँति आप ने भी विदेशों में अड्डा जमाया और वहीं से क्रान्ति की तैयारियाँ करने लगे। योरुप और जापान के प्रवासी चीनियों की मदद से आपने स्थान स्थान में क्रान्तिकारी दल स्थापित किये। इस बीच में आप ने चीन में गुप्त कमेटियाँ कायम करने के लिये बाहर के देशों में खूब रुपये भी इकट्ठा किये। जिन दिनों विदेशियों की ज्यादतियों से तंग आकर उत्तर चीन में १९०० का बाक्सर विद्रोह हुआ, डा० सनयात सेन ने इस सुअवसर का उपयोग मंचू खान्दान की बादशाहत को खतम करके प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने के लिये किया किन्तु इस प्रयत्न में आप सफल न हो सके। हाँ क्रान्तकारियों का घोर दमन सरकारी कर्मचारियों द्वारा जरूर होने लगा।

डा० सनयात सेन ने इन्हीं दिनों राजनीतिक क्षेत्र में अपने तीन सिद्धान्त लोगों के सामने रक्खे। राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र और समाजवाद। आपका कहना था कि किसी आदर्श गवर्नमेण्ट के लिये आवश्यक है कि इन्हीं तीनों सिद्धान्तों को वह अपना स्तम्भ बनाये। आप ने स्वयम विस्तार पूर्वक इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया। उदाहरण के लिये आप ने उक्त सिद्धान्तों की रक्षा के लिये गवर्नमेण्ट के पाँच विभाग बनाये। शासन विभाग, व्यवस्थापिका विभाग, न्याय विभाग, सिविल सर्विस परीक्षा विभाग और सेन्सर विभाग। सारांश यह कि आपका प्रभाव इतना बढ़ा कि चीन के सम्राट की ओर से डा० सनयात सेन के सिर के लिये एक लाख पौंड का इनाम घोषित किया गया। १८९६ ई० का जिक्र है, उन दिनों आप लन्दन में थे, चीन के राजदूत निवास में आप बन्द कर दिये गये। किसी को कुछ पता न था। सारी कार्यवाही चुपके चुपके चीन सरकार की ओर से हुई थी। डा० सनयात सेन ने चुपके से वहाँ के एक वार्डर के हाथ एक चिट्ठी अपने मित्र के पास भेजी। इसी मित्र की कोशिशों की वजह से आप कई दिनों बाद रिहा हुए।

चीन में क्रान्ति की खूब जोरों में तैयारियाँ हो रही थीं। चीन के तत्कालीन सम्राट की कायरता से लोग तंग आ गये थे। जब तक सम्राज्ञी डवाजर जीवित थी उसने देश के गर्म नेताओं को सुधार के फन्दों में फँसा रक्खा था, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद मन्चू खान्दान में और कोई ऐसा न रहा जो उसकी तरह कूटनीति से काम लेता। अतएव देश के भीतर राजनीतिक अशान्ति बढ़ती ही गई। इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने वाला कूमिंगटांग दल था जिसकी स्थापना डा० सनयात सेन ने कुछ दिनों पूर्व की थी। हजारों मील दूर से डा० सनयात सेन चीन की क्रान्ति की तैयारियों का संचालन करते रहे। मानों दूर पर बैठा हुआ इञ्जीनियर बिजली के बटन दबा रहा हो। जिस समय १९११ ई० की क्रान्ति हुई, डा० सनयात सेन लन्दन में थे। पाँचवीं जनवरी १९११ ई० को आप चीन लौटे और राष्ट्रीय समिति के अनुरोध से आपने नानकिंग में नई प्रजातन्त्र का अस्थायी प्रेसीडेन्ट बनना स्वीकार किया।

अभी क्रान्ति का सिलसिला जारी हो था। आपके चीन में आ जाने से जनता का उत्साह और भी बढ़ा।

निदान १२वीं फरवरी को चीन के तत्कालीन सम्राट ने स्वयम् राजगद्दी का त्याग किया और उसने घोषणा की कि चीन की हुकूमत की बागडोर प्रजातन्त्र के हाथों में दी जाय। शाही ज़माने का एक मन्त्री, युवान-शी-काई जिसने क्रान्तकारियों का पक्ष लिया था गवर्नमेण्ट के पुनर्निर्माण के लिये चुना गया, और डा० सनयात सेन कुछ दिनों के लिये प्रेसीडेन्ट पद से अलग हो गये। प्रजातन्त्र की अध्यक्षता का भार यूवान को सौंपा गया और डा० सनयात सेन ने स्वयम् व्यापार विभाग के डाइरेक्टर जनरल के पद को ग्रहण किया। विशेषज्ञों का विचार है कि डा० सनयात सेन हुकूमत और इन्तिज़ाम का काम ठीक तौर से सम्हाल नहीं सकते थे, यद्यपि आप राजनीति में पूर्ण पण्डित थे और आपके राजनीति सम्बन्धी सिद्धान्त सर्वथा दोषरहित थे।

यूवान-शी-काई के हाथों में प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तों का विकास ठीक रूप से न हो पाया। यूवान-शी-काई यश लालसा के पीछे कूमिंगटांग पार्टी के मूल सिद्धान्तों को भूल गए। डा० सनयात सेन भला इसे कब सह सकते थे, उन्होंने यूवान-शी-काई का तीव्र विरोध किया और यूवान-शी काई की मृत्यु के बाद १९१७ ई० में नानकिंग की प्रजातन्त्र सरकार की सत्ता न मान कर डा० सनयात सेन ने दक्षिण चीन में एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र गवर्नमेण्ट स्थापति की। अपना प्रधान कार्यालय उन्होंने कैन्टन में बनाया। लेकिन यहाँ पर भी फौजी अफसरों ने धीरे धीरे हुकूमत की शक्ति अपने हाथ में लेनी शुरू की। और कोई चारा न देख कर डा० सनयात सेन ने इस प्रजातन्त्र की अध्यक्षता से इस्तीफा दे दिया। किन्तु १९२१ ई० में दक्षिण चीन की इस प्रजातन्त्र गवर्नमेण्ट ने डा० सनयात सेन को अध्यक्ष के पद पर फिर बुलाया। उस उग्र दल के प्रजातन्त्र का जोर दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया और नानकिंग की गवर्नमेण्ट को अपने हाथ में करने की तैयारियाँ होने लगीं।

जैसा कि हम कह आए हैं डा० सनयात सेन का तीसरा सिद्धान्त समाजवाद का था। पूँजीपतियों से डा० सनयात सेन की पार्टी की सदा अनबन रही। किन्तु इस समाजवाद ही के कारण किसान और मजदूरों की पूर्ण सहानुभूति आप के साथ थी। आप का आन्दोलन सामूहिक आन्दोलन था। कैंटन के मजदूरों को मजदूरी बढ़ाने के लिये आपने कई बार सफल प्रयत्न किये।

आपकी मृत्यु पेकिंग में १२ मार्च १९२५ ई० में हुई। आप कैन्सर की बीमारी से मरे। आपकी अस्थियाँ १९२९ में पेकिंग से नानकिंग ले आई गईं और एक भव्य स्मारक भवन में रक्खी गईं।

डा० सनयात सेन ने चीन में एक जान फूंकी थी। उनके राजनीति सम्बन्धी तीन सिद्धान्तों पर १९२७ में नानकिङ्ग की नेशनल गवर्नमेण्ट ने अपना प्रजातन्त्र शासन विधान बनाया। मृत्यु के उपरान्त डा० सनयात सेन की प्रतिष्ठा एक देवता के तुल्य होने लगी। जीते जी चीन की जनता के हाथों में गवर्नमेण्ट की सत्ता को ले आने की आप कोशिश करते रहे। मरने के समय भी आप की यही एक मात्र इच्छा रही। मृत्यु के कुछ समय पहले आप ने राष्ट्र के नाम जो वसीयत की थी, उसे हम यहाँ देकर यह लेख समाप्त करते हैं।

डा० सनयात सेन का वसीयत-नामा

"पिछले ४० वर्षों से लगातार मैं जन क्रान्ति के लिये उद्योग करता रहा हूँ। इस लम्बी अवधि में मेरी एक मात्र कामना यह रही है कि हमारा देश भी अन्य राष्ट्रों की तरह स्वतंत्र और समृद्धिशाली बन सके।

इन पिछले ४० वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि मेरी यह कामना तभी पूरी हो सकती है जब जनसाधारण अब पूर्णरूप से जागृति पैदा कर सकें, और शोषित वर्ग के साथ कंधे से कंधा मिलाएं।

क्रान्ति का काम अभी पूरा नहीं हो सका है। हम अपने साथियों से अनुरोध करते हैं कि कूमिङ्ग-टांग पार्टी के आदेश और उसके प्रस्तावों पर वे अमल करें। हमें भरसक प्रयत्न करना है कि विदेशी राष्ट्रों से वञ्चनामय जो सन्धियाँ चीन की पिछली गवर्नमेण्ट ने की हैं, उन्हें हम भंग करायें। हम नहीं चाहते कि विदेशी राष्ट्र जबर्दस्ती चीन का शोषण करें। तुम्हारे लिये यही मेरी हार्दिक प्रेरणा है"।

सनयात सेन

चीन की धार्मिक व्यवस्था

न का प्राचीनतम धर्म 'एक ईश्वरवाद' था! किन्तु इस ईश्वर का रूप भिन्न था। मनुष्य की पहुँच के बाहर, दूर, ऊँचे आसमान पर वह सर्व शक्तिमान ईश्वर चराचर सब जीवों के ऊपर हुकूमत करता था। सृष्टि-कर्त्ता की उपाधि इस ईश्वर को अभी नहीं मिली थी। न्याय की तुला हाथ में लिये हुए दया और रहम के बगैर पापियों को दण्ड देता और धर्मात्माओं को पुरस्कार। उसे इसकी इच्छा न थी कि मनुष्य उसकी भक्ति या उससे प्यार करें। उन दिनों के धर्म में शैतान लोगों को पाप के रास्ते पर ले जाने के लिये बहकाता न था। शैतान नाम की चीज ही न थी। मोक्ष की भी भावना का जन्म तब तक नहीं हुआ था। अच्छे कर्म करने से मरने पर ईश्वर में लीन हो सकेंगे, इस प्रकार की कोई बात उन दिनों न थी। इस ईश्वर को चीनी भाषा में 'ति-अन' कहते हैं। बोल चाल की भाषा में इसका अर्थ होता है 'आसमान'। किन्तु समय की प्रगति के संग धीरे धीरे 'ति-अन' का चित्र एक मनुष्य के आकार का बनाया जाने लगा।

मूल धर्म ऐतिहासिक काल से पूर्व

चीन के मूल धर्म की उक्त व्याख्या के साथ साथ और भी भावनाएँ उत्पन्न होने लगीं। सूर्य्य, चन्द्रमा, पाचों ग्रह ये सब देवता का स्वरूप धारण करने लगे। इनकी पूजा होने लगी। माता धरती ने भी देवी देवताओं की सूची में स्थान पाया। आँधी, वर्षा, ग्रीष्म की भीषणता, विद्युत आदि सभी में किसी न किसी देवता की इच्छा विदित होती। यहाँ तक कि घर के चौखट और आँगन में भी देवी देवताओं का वास माना जाने लगा। इन देवताओं की विधि पूर्वक पूजा होती—बलिदान और निछावरें चढ़तीं।

इन देवी देवताओं की पूजा के साथ साथ पुरुखों की पूजा का भी चलन बढ़ता गया। ठीक देवताओं की तरह विधि पूर्वक इनकी भी पूजा होती। सच्ची बात तो यह है कि साधारण जनता का धर्म पुरुखों की पूजा तक ही सीमित था। देवताओं की पूजा केवल राजा या बड़े बड़े सामन्त ही कर सकते थे।

धर्म पुस्तकें भी अब तक नहीं बन पाई थीं। धीरे धीरे उपदेशकों और ऋषि महात्माओं के वाक्यों को खूब महत्व दिया जाने लगा। ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व उक्त वाक्यों के संग्रह लिये जा चुके थे। इन्हें धर्म पुस्तक का स्थान मिला। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व चीन का सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'कनफ्यूशियस' हो गुजरा है। उसने प्राचीन कृतियों का संग्रह किया। चीन में उसे महात्मा की उपाधि मिली है। उसके धार्मिक उपदेशों को लोग बड़े चाव से सुनते थे। मरने के उपरान्त देवता की भांति उसकी पूजा होने लगी। चीन में कोई ऐसा शहर न बचा जहाँ कन्फ्यूशियस की मूर्ति स्थापना के लिये मन्दिर न बने हों। निदान कन्फ्यूशियस का भी एक धार्मिक मत चल निकला। कन्फ्यूशियस ने धर्म को समाज के कल्याण की दृष्टि से देखा। मनुष्य का समाज के प्रति क्या दृष्टिकोण होना चाहिये, इस प्रश्न की उसने विस्तृत विवेचना की। धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों की तह तक पहुँचने का उसने प्रयास नहीं किया है। समाज में मनुष्य का आदर्श आचरण क्या होना चहिये। कौन से नियमों का उसे पालन करना चाहिये, इन्हीं की विवेकपूर्ण व्याख्या उसने की है। उसका मत एक से प्रकार सच्चरित्रता की नियमावली है। परलोक के बारे में कन्फ्यूशियस के धर्म में आपको कुछ नहीं मिलेगा। कन्फ्यूशियस का कहना था कि हम जिन्दगी के बारे में जब इतना कम जानते हैं तो मृत्यु के उपरान्त हमारा क्या होता है इस प्रश्न का उत्तर तो और भी कठिन है। उसके विचार कुछ विचित्र ढंग के थे। उसका कहना था कि मनुष्य जन्मना तो है पुण्यात्मा होकर, किन्तु अपने आस पास के वातावरण की जगह से वह धीरे धीरे दुष्टात्मा होने लगता है। कन्फ्यूशियस ने बार बार उपदेश दिया है कि राजभक्ति और पितृभक्ति मनुष्य का सर्व्वोच्च धर्म है। ईश्वर के बारे में गोल मटोल शब्दों में कुछ इधर उधर की बातें उसने बताई हैं किन्तु पाप का दण्ड मिलेगा, या परलोक में हमारे सुकर्मों का अच्छा फल मिलेगा इस प्रकार की कोई व्यवस्था कन्फ्यूशियस के धर्म में नहीं मिलती। उसने मनुष्य को भला बनने

कन्फ्यूशियस का धर्म

का उपदेश दिया इस लिये कि सुकर्म करना अच्छा है न कि इसलिए कि सुकर्म का अच्छा फल मिलेगा। इस अर्थ में कन्फ्यूशियस का सिद्धान्त भगवान् कृष्ण के

'कर्मण्ये वा धिकारस्ते मा फलेषु कदाचिन्'

से मिलता है।

कन्फ्यूशियस ने पुरातत्व की बराबर प्रतिष्ठा की है और इसी कारण उसके बाद के कुछ दार्शनिकों ने कन्फ्यूशियस का विरोध भी किया। अतीत की गोद में पड़े रहने की प्रेरणा तो कन्फ्यूशियस धर्म में खूब मिलती है, किन्तु भविष्य के लिये मौलिक मार्ग ढूँढ़ने के लिये प्रोत्साहन कन्फ्यूशियस नहीं देता। रूढ़िवादिता की ओर वह हमें बरबस खींचता है। क्रान्ति के लिये कन्फ्यूशियस धर्म में उद्बोधन नहीं है। यही कारण है कि सहस्रों वर्ष से पूज्य कन्फ्यूशियस के प्रति १९२७ की क्रान्ति में तीव्र तिरस्कार का प्रदर्शन क्रान्तिकारियों ने किया। राजभक्ति और आज्ञाकारिता प्रजातन्त्र के मूल नियमों के विरुद्ध है और कन्फ्यूशियस के धर्म में ये ही बातें कूट कूट कर भरी गई थीं। स्वभावतः कन्फ्यूशियस का धर्म क्रान्ति के पुजारियों को कभी प्रिय नहीं हो सकता था।

मेन्शियस

मेन्शियस कन्फ्यूशियस का शिष्य था। मेन्शियस का जन्म ईसा से ३०० वर्ष पूर्व हुआ था। अपने समय का यह एक सुप्रसिद्ध फिलासफर (दार्शनिक) था। उसने अपने गुरु कन्फ्यूशियस के उपदेशों का सर्वत्र प्रचार किया। विशेषज्ञों का कहना है कि यह मेन्शियस के ही परिश्रम का फल है कि कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों का सारे चीन में प्रचार हुआ।

टाओइज्म

कन्फ्यूशियस के मत में धार्मिक सिद्धान्तों का समावेश बड़ी प्रचुर मात्रा में है, किन्तु यह स्वयं 'धर्म' के नाम से नहीं पुकारा जा सकता। कन्फ्यूशियनिज्म आदि का अध्ययन कर अन्य दार्शनिकों ने आदर्श आचरण के लिये नियम बनाये। सदाचरण का रास्ता बताया—चीनी भाषा में 'रास्ता' को 'टाओ' कहते हैं। इस लिये इन नियमों का नाम 'टाओ' पड़ा और बाद में इससे 'टाओइज्म' (टाओ धर्म) शब्द मिला।

समय की प्रगति के संग 'टाओ' के बड़े बड़े गंभीर अर्थ लगाये जाने लगे। शिष्यों ने 'टाओ' का अर्थ लगाया 'पूर्ण'—'अद्वैत' जिसमें काल और देश दोनों निहित हैं। 'आदि पुरुष' का नाम भी 'टाओ' को दिया गया। इसे सृष्टि से परे अगोचर माना गया। मृत्यु के उपरान्त आत्माएँ 'टाओ' के पास जाती हैं। यदि वे पाप से रहित हैं तो जाकर 'टाओ' में मिल जायगी, मोक्ष प्राप्त कर लेंगी और आवागमन के कष्ट से उन्हें छुट्टी मिल जायगी।

कुछ काल और बीतने पर इस 'टाओ' की सगुण कल्पना भी की जाने लगी। 'टाओ' एक दीप्तिमान प्रकाश का पिण्ड बहुत दूर आकाश में है जिसके चारों ओर मृत आत्माएँ परिक्रमा करती रहती हैं। परलोक की इन धारणाओं के संग स्वार्थी लोगों ने अपने मतलब की बातें भी गढ़ ली थीं। किसी ने अमृत की कल्पना की तो किसी ने वरदान से पारस पत्थर प्राप्त करने की कहानी गढ़ डाली। समय की प्रगति के साथ 'टाओ' धर्म में भी रीति और रस्मों की चलन हुई। तरह तरह की पूजा करने की विधियाँ निकाली गई। अनेक कुरीतियाँ और बुराइयाँ भी इसमें आ गई। किन्तु तो भी धर्म योंही चलता रहा—'टाओ' धर्म आज भी चीन में फूल फल रहा है और सच्ची बात तो यह है कि जहाँ तक रीति रवाज का प्रश्न है, 'टाओ' धर्म और दूसरे धर्मों में अधिक अन्तर नहीं दिखाई देता।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म चीन में पहले पहल कब आया, इसका ऐतिहासिक प्रमाण ठीक ठीक नहीं मिलता। कहा जाता है कि ईसा से २०० वर्ष पहले भारत से कुछ भिक्षुगण बुद्ध भगवान का सन्देश सुनाने चीन में गये। यहाँ ये लोग जेल में बन्द कर दिये गये। स्वर्ण आभा से परिपूर्ण एक व्यक्ति ने आधी रात को आकर जेल के दरवाजे को खोल दिया, इस प्रकार उन्हें छुटकारा मिला। चाहे यह घटना सच न हो, किन्तु इससे इतना पता तो चलता ही है कि ईसा के जन्म से कुछ वर्ष पूर्व चीन वालों को बौद्ध धर्म के बारे में खबर मिल चुकी थी।

ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है कि सन् ५८ में सम्राट मिंगटी ने स्वप्न देखा कि स्वर्ण ज्योति से घिरा हुआ एक व्यक्ति उसे दर्शन देने आया है। उक्त स्वप्न को भगवान बुद्धदेव की कृपा करके माना गया। सम्राट मिंगटी के समय से ही चीन में बौद्ध धर्म का

प्रचार होना शुरू हुआ। इस बात के भी ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं कि सन् ६५ में सम्राट ने तिब्बत में कुछ आदमी भेजे कि वहाँ से बौद्ध धर्म सम्बन्धी पुस्तकें और मूर्त्तियाँ वे अपने साथ ले आयें। यह दल ६७ ई० में लौटा। साथ में अनेक पुस्तकों और मूर्त्तियों के अतिरिक्त वे लोग एक भारतीय विद्वान भिक्षुक कश्यपमदंग को भी ले गये। कश्यपमदंग के लिये एक सुन्दर भव्य मन्दिर बनाया गया। वहाँ रह कर वह उक्त पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद करने लगा। कश्यपमदंग की अनुवादित धर्म पुस्तकें दो एक अब भी मिलती हैं। शेष एक सम्राट ने, जो बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी था, जलवा डालीं।

इसके बाद सैकड़ों वर्ष तक भारत से भिक्षुगण बुद्ध भगवान का सन्देश सुनाने आते रहे। चीन से भी भक्त जनों का ताँता भारत तक लगा ही रहा। ये लोग भगवान बुद्ध का जन्म-स्थान देखना चाहते थे—बौद्ध धर्म के ऐतिहासिक स्थानों का स्वयं निरीक्षण करने की लालसा इनके मन में थी। इन चीनी यात्रियों में अनेक योग्य व्यक्ति भी थे—फाह्यान और ह्वानसांग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। बौद्ध धर्म का सारे चीन में खूब प्रचार हुआ। बौद्ध धर्म के अनुयायी बहुत से सम्राट भी थे। सम्राट की वजह से बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा भी खूब बढ़ी, और इसके अनुयायियों को भी प्रोत्साहन मिला। एक सम्राट ने तो राजसी ठाठ का त्याग कर भिक्षु का बाना धारण कर लिया था। किन्तु कुछ सम्राटों ने 'कन्फ्यूशियस' मत के प्रभाव में पड़ कर बौद्ध धर्म का तीव्र विरोध किया। भिक्षुओं के विहार जबर्दस्ती जलवा दिये ताकि भिक्षु बाहर आकर संसार के संघर्ष में भाग लें, क्योंकि 'कन्फ्यूशियस' के मतानुसार प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि मनुष्य संसार में लिप्त रह कर संसार की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करे।

किन्तु ११वीं शताब्दी के बाद से बौद्ध धर्म पर किसी प्रकार की रुकावट इन सम्राटों ने नहीं डाली। चीन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बौद्ध धर्म फैल गया। इस लम्बी अवधि में बौद्ध धर्म की रूप रेखा में भी बहुत कुछ परिवर्तन हुए। चीन निवासियों ने इसमें काट छाँट भी की। धीरे धीरे बौद्ध धर्म में भी पौराणिक कहानियों की तरह अनेक देवी देवताओं का समावेश हुआ—बुद्धदेव के नये नये अवतार, बोधिसत्व आदि की रचना हुई। चीन के दार्शनिकों ने धार्मिक सिद्धान्तों में दर्शनशास्त्र का भी पुट जहाँ तहाँ दिया। फल स्वरूप चीन का बौद्ध धर्म भारत के बौद्ध धर्म से बहुत कुछ अंशों में भिन्न है।

किन्तु आज चीन के जनसाधारण मन्दिरों में जाते हैं। पूजा की सामग्री जुटा कर पुरोहित की सहायता से पूजा समाप्त कर वापस जाते हैं—गहराई तक न तो उन्हें सोचने की फुर्सत होती है, न इच्छा।

मंदिर के भीतर पूजा हो रही है और सामने अगर बत्ती जल रही है।

मन्दिर के अहाते में गये, अगरबत्ती जलाई, मूर्त्ति के सामने घुटने टेके और पुजारी से शकुन निकलवाये। अपने लिये पुजारी से मन्त्र पढ़वाये और पुजारी को दक्षिणा देकर चलते हुए—अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

चीन के मन्दिर प्रायः एक ऊँची चहारदीवारी से घिरे होते हैं। उसी घेरे में अन्य देवी देवताओं के छोटे छोटे मन्दिर भी रहते हैं। ये छोटे देवतागण प्रायः बड़ी भयानक शक्ल के होते हैं, कोई दाँत निकाले क्रोध से देख रहा है, तो कोई काल स्वरूप डरा रहा है। कहीं कहीं 'दया' के देवता भी दिखाई पड़ते हैं। इन मन्दिरों की इमारतें अत्यन्त सुन्दर होती हैं, और इनके पुजारी भी बड़े हंस मुख होते

हैं। ये रेशमी वस्त्र पहनते हैं, किन्तु बौद्ध धर्म में सादगी पर बहुत जोर डाला गया है, अतएव इनकी

मंदिर के आंगन में धूप और अगरबत्ती जलाने का धूपदान।

पोशाक रेशमी कपड़ों के कई टुकड़ों से मिली रहती है, मानों यह प्रगट करने के लिये गरीबी के कारण पोशाक में पेवन्द लगा रक्खे हैं।

मज्डाधर्म

मज्डाधर्म पारसी धर्म का ही एक रूपान्तर है। ईसा की सातवीं शताब्दी में अग्निपूजकों का धर्म चीन में आया, किन्तु चीन में यह पनप न सका। २०० वर्ष के अन्दर ही इस की जड़ें सूख गईं।

मुहम्मद साहब के मामू वहाब-अबी-काबा के संग एक टोली चीन में ६२८ ई० में पहुँची थी। ये

मुस्लिम धर्म

लोग समुद्री रास्ते से गये। कैन्टन में जहाज लगा, और यहीं ये लोग उतरे। ये लोग सम्राट के लिये भेंट लेकर आये थे; सम्राट की ओर से इनको आव भगत हुई। चीन की पहली मसजिद कैन्टन में बनी, जो अब भी मौजूद है (इसमें कई बार मरम्मत का काम हो चुका है)। इसके बाद भी मुसलमान लोग आये, किन्तु ये तिजारत के उद्देश्य से आते थे, और फिर वापस चले जाते थे। सन ७५५ में अबूगफ़र ने ४००० अरब के बाशिन्दों की एक फौज विद्रोह दबाने के लिये भेजा। ये ही अरब सिपाही चीन में बस गये, यहीं पर उन्होंने शादियाँ भी कीं, और अपने घर बसा लिये। लगभग ४०० वर्ष बाद चंगेज़ खाँ के हमले के बाद मुसलमान सरदार चीन में काफ़ी संख्या में आये। इस तरह यहाँ मुसलमानों की संख्या बढ़ी।

यहूदी धर्म

ईसा से ७०० वर्ष पूर्व यहूदी धर्म के प्रवर्त्तक भी चीन में पहुँचे थे, किन्तु पारसी धर्म की तरह यह भी चीन में पनप न सका।

ईसाई धर्म

चीन के प्रत्येक प्रान्त में रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट धर्म के गिरजेघर बने हुए हैं। १८६० में चीन सरकार की ओर से फरमान जारी हुआ था कि कोई भी अपनी इच्छा से ईसाई धर्म ले सकता है। पादरियों को भी धर्म प्रचार की पूरी आज़ादी है।

चीन में चित्रकला का विकास

चीन का अतीत बहुत ही शानदार रहा है। दर्शन, साहित्य, कला सभी क्षेत्रों में प्राचीन काल के चीन ने प्रशंसनीय उन्नति की थी। चीन निवासियों की एक अपनी अलग ही शैली थी। सहस्रों वर्ष पहले कला की जिस चरम सीमा तक वे पहुँच चुके थे, यूरुप उस ऊँचाई तक बहुत काल उपरान्त भी नहीं पहुँच पाया।

चीन की चित्रकारी का अन्तर्राष्ट्रीय-कला-जगत में एक विशिष्ट स्थान है। चीन का पिछले १२०० वर्षों का इतिहास सुप्रसिद्ध चित्रकारों की कृतियों से विभूषित है। चीन के चित्रकारों और साहित्यकारों में एक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है—इसका पर्याप्त कारण भी है। चीन में लेखनकला और चित्रकारी में इतना गहरा सम्बन्ध इसलिये है कि लिखने में भी वहाँ लेखनी की जगह ब्रुश का प्रयोग होता है। अतएव चीन की लेखनकला भी एक प्रकार की चित्रकारी है।

चीन की चित्रकारी में रेखाङ्कित चित्र का ही सर्वोपरि स्थान है। यद्यपि चटकीले रंगों का भी प्रयोग चीन के चित्रकारों ने कहीं कहीं पर किया है, फिर भी चीन के चित्रों में यह मुख्य बात देखने में आती है कि वे अधिकांश काले रंग में तैयार किये गये हैं—चीन के इन चित्रकारों ने केवल एक रंग का सहारा लेकर ब्रुश की सहायता से रंग देकर कमाल कर दिखाया है। इन चित्रों की बारीकी के कायल यूरुप के कुशल चित्रकार भी आज दिन हो रहे हैं। रेखाओं की सहायता से भावप्रदर्शन में चीन के कलाकारों ने समूचे संसार को मात कर दिया है।

चटकीले और सुनहले रंग का प्रयोग बौद्धकालीन चीन में चित्रों के निर्माण के लिये खूब हुआ, तो भी धार्मिक चित्रों में रेखाङ्कित भाग का महत्व कम नहीं हुआ।

आदर्श

चीन के चित्रकारों का एकमात्र उद्देश्य भाव-चित्रण का था। वाह्यरूप के वे उतने कायल न थे। प्राचीन चित्रों में अनेक चित्र तो प्रमुख कविताओं के आधार पर बनाये गये। चीन की एक कहावत है कि चित्र एक मूक कविता है। यही कारण है कि चीन के कुशल चित्रकार ऊँचे दर्जे के कवि भी होते हैं। भावों की प्रधानता चीन के चित्रों में मुख्य चीज़ होती है, चित्र की बनावट और उसमें रंग भरने की ओर चित्रकार कम ध्यान देते हैं। हल्के हल्के रंग से चित्र तैयार किये जाते हैं। वाह्य वस्तुओं पर हमारी निगाह जाकर अटक न जाय, यही विचार चीन के चित्रकारों के मस्तिष्क में रहता है। भारत की प्राचीन चित्रकला में भी इस मनोवृत्ति की हमें झलक मिलती है। अजन्ता के चित्र इसके साक्षी हैं।

चीन के चित्रों में और यूरुप के चित्रों में हम एक और अन्तर पाते हैं। वह यह कि यूरुप के चित्रकारों ने अपने चित्रों में मनुष्य के व्यक्तित्व को एक प्रमुख स्थान दिया है, उसके शरीर की रचना, उसके रूप रंग का प्रदर्शन बड़े चाव और दक्षता से इन चित्रकारों ने किया। इस सिलसिले में इटली के चित्रकारों का नाम लिया जा सकता है। यूरुप के चित्रकारों ने मानव शरीर को इतना महत्व प्रदान किया है कि अक्सर नग्न चित्र बनाये गये जिसमें सुन्दर सुडौल शरीर व्यक्त करने में चित्रकार ने अपना कौशल और अपना परिश्रम दिखाया है। व्यक्तियों को भिन्न भिन्न दशाओं में दिखाया गया। सारांश यह कि मनुष्य के शरीर को चित्रकारों ने भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से देखा, और उसी तरह से उन्हें व्यक्त किया।

चीनी चित्रकार रूप भरने में, और सुडौल चित्र गढ़ने में कच्चा है, क्योंकि उसका तो आदर्श ही कुछ और है। वह तो मनुष्य के मनोभावों को अधिक मूल्य प्रदान करता है, और उन्हीं का वह अपनी तूलिका की सहायता से चित्रण भी करता है। उसे इसकी परवाह नहीं कि चित्र में उसके पात्र की उंगलिया सुडौल हैं या नहीं, किन्तु वह इस बात पर जरूर ध्यान देगा कि उसकी उंगलिया किस तरह मुड़ी हुई हैं? उंगलियों के ढंग से किस प्रकार का भाव झलकता है? सूक्ष्मता मानो चीन के चित्रकारों के नस नस में निहित थी। उजाड़ प्रदेश, सुनसान पर्वत, आँधी तूफ़ान में भी वे सौन्दर्य्य भावना की

अनुभूति करते थे, और इसमें गजब का कमाल भी उन्होंने हासिल किया था। प्रकृति का आदर करना वे जानते थे। निर्जीव वस्तुओं के सौन्दर्य्य की क़द्र वे इस ख्याल से नहीं करते थे कि वे मनुष्य के काम की हैं, वरन् इसलिये कि वे स्वयं ही सुन्दर हैं। आज से सहस्त्रों वर्ष पहले चीन के चित्रकारों ने प्राकृतिक दृश्यों को अपने चित्रों में स्थान देना सीखा था, और इस दृष्टि कोण से चीन की चित्रकला का सारे संसार में सब से ऊँचा स्थान है। इन चित्रकारों ने मनुष्य और प्रकृति के बीच एक बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया था, और उसे उन्होंने सदैव ही निबाहा है। किसी महान पुरुष का चित्र बनाना हुआ तो चित्र के पीछे ऊँचे ऊँचे हिमाच्छादित पर्वत अवश्य होंगे।

इतिहास

ऐतिहासिक काल के पूर्व से लेकर ६१८ ई० तक

यद्यपि चीन की चित्रकला का इतिहास बहुत ही प्राचीन है, फिर भी चित्रकला का आरम्भ कब हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर हमें ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं, वरन् किंवदन्तियों में मिलता है। साहित्य के ग्रन्थों से पता चलता है कि ईसा से तीन शताब्दी पूर्व चित्रकारी ने कला की हैसियत प्राप्त कर ली थी। इन्हीं दिनों ब्रुश का भी आविष्कार हुआ था, जिसके प्रयोग में चीन निवासियों ने अपूर्व दक्षता दिखाई है। उन दिनों चित्र प्रायः रेशम की लम्बी चादरों पर बनाये जाते थे। फिर चूने से पुती हुई दीवारों पर भी चित्र बनाने की प्रथा निकली। कागज़ के लम्बे टुकड़ों पर भी बाद में चित्र बनाये जाने लगे। ये चित्र आयताकार और लम्बे हुआ करते थे, और पूरा चित्र जन्मपत्री के कागज़ की तरह लपेटा हुआ रहता था। लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में इस तरह के जन्मपत्री की भाँति लपेटे हुए लम्बे कागज पर बने हुए चीन के कुछ प्राचीन चित्र रक्खे हैं।

उन दिनों के चित्रों में मुखाकृति (Portraits) और ऐतिहासिक घटनाओं के व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। तत्कालीन चित्रकला पर, ऐसा जान पड़ता है, कनफ्यूशियस मत का खूब प्रभाव पड़ा था, इसी कारण वाह्य वस्तुओं पर चित्रकारों ने अधिक ध्यान दिया। इस काल से पहले के चित्रों में शेर और अजगर का सृजन भी चीन के चित्रकार कर चुके थे—शेर प्रकृति की शक्तियों का प्रतीक था, और अजगर प्रेतात्माओं की शक्ति का। इस तरह इन चित्रकारों की कल्पना शक्ति का क्षेत्र क्रमशः विस्तृत होने लगा। और बाद में बौद्ध धर्म के ज़माने में तो चित्रकारों के लिये प्रचुर मात्रा में सामग्री मिली।

दूसरी शताब्दी में आने पर प्रमुख चित्रकारों के नाम हमें मिलते हैं। कू-कि-चाई (चौथी शताब्दी) का नाम चीन की चित्रकला के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसके हाथ का बना हुआ एक चित्र लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में रक्खा है। कू-कि-चाई मुखाकृति बनाने में पूर्ण दक्ष था।

टांग वंश ६१८ ई० से ९०७ तक

टांग वंश का विस्तार फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था। भारत से अनेकों बौद्ध भिक्षु चीन में बुद्ध भगवान का सन्देश सुनाने आया करते थे। चीन में बौद्ध धर्म सर्वत्र फैल चुका था। चीन निवासियों की संस्कृति में बौद्ध आदर्श और भावनाएँ भली भाँति प्रवेश कर चुकी थीं। अतएव टांग वंश के समय की चित्रकला बौद्ध आदर्श के प्रभाव से ओतप्रोत है। इस काल का प्रमुख चित्रकार वू-ताओज़ू चीन का सर्वश्रेष्ठ कलाकार समझा जाता है। चित्रकला के प्रत्येक विभाग में उसे पूर्णता प्राप्त थी। वू-ताओज़ू जिस ब्रुश से चित्र बनाता था, वह ब्रिटिश म्यूज़ियम में रक्खा हुआ है। इन्हीं दिनों चीन की चित्रकारी में दो विचारधाराएँ निकलीं। एक ने चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों को खूब महत्व दिया और दूसरी ने वाह्य रूप रंग का तिरस्कार कर भावों को प्रधानता पर जोर दिया।

संग वंश ९०७ से १२८० ई० तक

संग बादशाहों का युग कला का युग था। प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता हर मामले में मिली थी। कला, साहित्य, दर्शन सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अनुसन्धान हुए। इस युग के धार्मिक चित्र अपने ढंग के बेजोड़ हैं। किन्तु इस युग के चित्रों में मुख्य बात है प्रकृति चित्रण। प्रकृति चित्रण में इन कलाकारों ने जिस कल्पना शक्ति का परिचय दिया है, उसकी

झलक इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध प्रकृति पुजारी वर्ड्सवर्थ में हमें मिलती है। संग काल के चित्रकारों ने अपने

चीन की प्राचीन चित्रकारी का एक नमूना।

हृदय का आह्लाद निर्जन पर्वत, कुहसा, झरने, चिड़ियों और चन्द्रमा की स्निग्ध चाँदनी का चित्र खींच कर प्रगट किया है। इन चित्रों में कल्पनाशक्ति के लिये उद्बोधन की भी प्रचुर मात्रा में सामग्री है।

१२८० से १६४४ तक

'संग' काल के भावोत्पादक चित्रों में धीरे धीरे शिथिलता आने लगी। इन चित्रों में अब छोटी छोटी चीजों का भी समावेश होने लगा। चित्रों में पहले जैसी सादगी न रही। चीजों को सजाधजा कर चित्र में व्यक्त करने की प्रथा निकली।

यद्यपि यूरुपीय कलाकारों के स्पर्श में चीन के चित्रकार आये, फिर भी चीन की चित्रकला ने अपनी

१६४४ से वर्तमान समय

निज की शैली जारी रक्खी। हां बाह्य वस्तुओं को ये चित्रकार भी अब ज्यादा महत्व देने लगे, किन्तु प्रकृति के प्रति उनका स्नेह पहले जैसा ही बना रहा। प्राकृतिक दृश्यों को वहां के चित्रों में अब भी महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। चीन के आधुनिक चित्रों में अब रेखाओं और काले रंग की ही प्रधानता रहती है।

चीन के प्राचीन चित्र बहुत कम मिलते हैं। विदेशियों के आक्रमण ने चीन के पुस्तकालयों को जलाया, उनके सग्रहालयों को नष्ट किया। आये दिन इन आफतों का सामना करना पड़ा। भला ऐतिहासिक सम्पत्ति सुरक्षित कैसे रहती ?

आज भी, इस २० वीं शताब्दी के सभ्ययुग में जापान चीन के विश्वविद्यालयों पर बम गिरा कर सभ्यता और कला का गला घोंट रहा है। चीन ने इससे भी बड़े पाशविक हमले सहे हैं, और इस बार भी जापान को ही मुँह की खानी पड़ेगी।
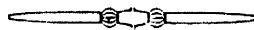
चीन के पड़ोस में विदेशी शक्तियों का जमघट

अगर चीन का देश योरुप से अधिक दूर न होता तो भारतवर्ष की तरह चीन भी बहुत पहले ही अपनी आज़ादी खो बैठता। जब धुआंकश जहाज़ (स्टीमर) तेज़ी से चलने लगे तब योरुपीय शक्तियां धीरे धीरे चीन में घुसने का प्रयत्न करने लगीं। चीन में समुद्रीय रास्ते से ही आसानी से घुसना हो सकता है। पश्चिम की ओर ऊँचे पहाड़ चीन को एशिया के दूसरे भागों से अलग करते हैं। उत्तर की ओर से रूस का प्रभाव पड़ता है। अतः योरुपीय शक्तियां उन्नीसवीं सदी के अन्त में और बीसवीं सदी के आरम्भ में जलमार्गों द्वारा चीन में प्रवेश करने लगीं। उन्होंने अपने व्यापार को बढ़ाने के लिये चीन में स्वतन्त्र सन्धि-सम्बन्धी बन्दरगाह (Treaty Ports) स्थापित किये।
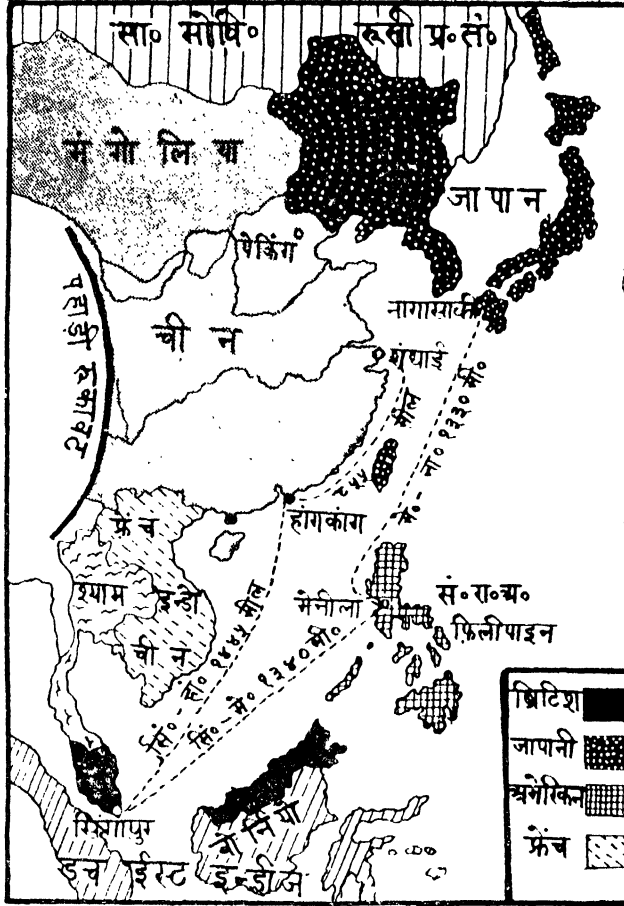
चीन के पड़ोस में विदेशी पूर्वी राज्य

जापान ने कोरिया और मंचूकुओ (मंचूरिया) में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब वह उत्तरी चीन में बढ़ रहा है। ब्रिटेन ने हांगकांग पर अधिकार कर के कैन्टन और दक्षिणी चीन के व्यापार को अपनाया। सिंगापुर का ब्रिटिश जहाज़ी अड्डा चीन से केवल १५०० मील दूर है। इंडोचीन में फ्रांस का अधिकार है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका फिलीपायन द्वीप में डटा हुआ है। मंचूरिया में जापानी अधिकार हो जाने के कारण रूस का चीन से सीधा सबन्ध नहीं रह सका है। डच लोग अधिक दक्षिण की ओर पड़ गये हैं। वे अधिक बलवान भी नहीं हैं।

जापानी साम्राज्य

जापान ने योरुपीय शक्तियों की तरह नये हथियारों से सुसज्जित होकर हाल में फैलने का प्रयत्न किया है। पर आगे बढ़ने का काम मज़बूती के साथ हो रहा है। १८९४-९५ में चीन को हरा कर उसने फारमूसा पर अधिकार कर लिया। १९०४-५ में रूस को हरा कर जापान ने अपना अधिकार कर लिया। बड़ी लड़ाई के समाप्त होने पर क्याओचाओ नाम मात्र के लिये चीन को लौटा दिया गया लेकिन प्रशान्त महासागर के जिन द्वीपों पर जर्मनी का अधिकार था, उन पर राष्ट्र-संघ की ओर से जापान राज्य करने

जापानी साम्राज्य

कर जापान ने कोरिया और पोर्टआर्थर पर अधिकार कर लिया। १९१० में कोरिया देश खुल्लमखुल्ला जापानी साम्राज्य में मिला लिया गया। साथ ही साथ दक्षिणी मंचूरिया में जापान अपनी स्थिति को मजबूत करता गया।

बड़ी लड़ाई में क्याओचाओ से जर्मनों को भगा लगा। मंचूरिया पर हमला करने के समय राष्ट्रसंघ की सदस्यता से जापान ने इस्तीफ़ा दे दिया। लेकिन प्रशान्त महासागर के भूतपूर्व जर्मन प्रदेशों पर जापान पूर्ववत् शासन करता है। मंचूरिया में प्रबल हो जाने के बाद जापान ने उत्तरी चीन को अपनाने का निश्चय किया।

———

चीन में घुसने के मार्ग

बाहर से चीन में प्रवेश करने के लिये तीन प्रधान जल-मार्ग वहाँ की नदियों ने बनाये हैं। ह्वांगहो उत्तर चीन में, यांगटिसीक्यांग मध्यचीन में और सीक्यांग दक्षिणी चीन में प्रवेश करने के लिये प्रधान मार्ग बनाती हैं। इन नदियों के मुहानों पर विदेशियों का अड्डा है। हांग कांग द्वीप और पड़ोस की जमीन पर अँग्रेजी अधिकार होने के कारण दक्षिणी प्रवेश मार्ग की कुंजी ब्रिटेन के हाथ में है।

यांगटिसीक्यांग के मुहाने पर बसे हुए शंघाई शहर में कई विदेशी शक्तियों का अड्डा है। इन में संयुक्त-राष्ट्र अमरीका और ब्रिटेन प्रधान हैं। यांगटिसी क्यांग में सैकड़ों मील तक जहाज चल सकते हैं। लेकिन इसका मुहाना विदेशियों के अधिकार में होने के कारण विदेशी शत्रु इस नदी के मार्ग से लड़ाका जहाज भेज कर चीन के हृदय में छुरी भोंक सकते हैं। कोरिया पर जापानी अधिकार होने से चीन का उत्तरी जल-मार्ग जापान के अधिकार में है। सर्वोत्तम सुगम स्थल मार्ग उत्तर की ओर से है। यहाँ पहले रूस का प्रभाव था। आजकल मंचूरिया में जापान का अधिकार होने से उत्तरी स्थलमार्ग की कुंजी जापान के हाथ में है। इसी ओर से जापान ने चीन पर आक्रमण करने का निश्चय किया है।

चीन में घुसने के मार्ग

मंगोल लोगों का देश

रूसी-जापानी लड़ाई के बाद जापान ने रूस और चीन के बीच वाले प्रदेश में बढ़ने की जी तोड़ कोशिश की है। मंचूरिया पर अधिकार करने के बाद जापान ने रूस और चीन के बीच में नई स्थलीय

मंगोल लोगों का प्रदेश

रुकावट डाल दी है। इस से इन दोनों के बीच में स्थल मार्ग द्वारा आसानी से आना जाना नहीं हो सकता। मंचूरिया में जापान का फौजी अड्डा स्थापित हो जाने से उसे उत्तर, दक्षिण और पूर्व की ओर आक्रमण करने का अवसर मिल गया है।

जापानी सिपाही और एजेन्ट बड़ी तेज़ी से हाल में भीतरी (Inner) मंगोलिया में बढ़ रहे हैं। मंचूकुओ के सिंगन प्रान्त में रहने वाले २० लाख मंगोल लोग उसके शासन में पहले से ही आ गये हैं। बचे हुए ३० लाख मंगोलों में से १० लाख बाहरी (Outer) मंगोलिया के रेगिस्तान में, १० लाख भीतरी मंगोलिया में और १० लाख चीनी तुर्किस्तान, तिब्बत के कोकोनार प्रान्त और एशियाई रूस के बुरियत प्रजातन्त्र में रहते हैं।

———

चीन-विच्छेद

गत ९० वर्षों से चीन के प्राचीन साम्राज्य का विध्वंस करने में कई योरुपीय शक्तियाँ लग गईं। ब्रिटेन, रूस और फ्रांस ने चीन के कई बाहरी भाग बहुत प्रबल है। पश्चिम के भीतरी भागों में मज़-दूरों और किसानों का पंचायती राज्य है। इनके शत्रु इन्हें अक्सर डाकू कहते हैं। वे फौजी शासकों

चीन विच्छेद

दबा लिये। जापान ने कोरिया को छीनने के बाद मंचूरिया, भीतरी मंगोलिया और उत्तरी चीन को हड़पना आरम्भ कर दिया। नानकिंग की चीनी सरकार का प्रभुत्व मध्य चीन और दक्षिणी चीन में का विरोध करते हैं। इन सब को एकता के सूत्र में बाँध कर चियांग-काई-शेक ने चीन में एक प्रबल प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। इतने ही में जापान ने युद्ध छेड़ दिया।

———

नानकिंग की सरकार

नानकिंग की सरकार च्यांग काई शेक की अध्यक्षता में मध्य चीन के उन प्रान्तों पर राज्य करती है जो यांग्टिसीक्यांग के उत्तर और दक्षिण में स्थित हैं। उत्तर की पुरानी राजधानी पेकिंग या पेपिंग में जापानी प्रभुत्व है। च्यांग काई शेक की शक्ति का केन्द्र कैन्टन था। यहीं चीनी प्रजातन्त्र के संस्थापक सनयातसेन का प्रभुत्व था। हांगकाओ-कैन्टन रेलवे के बन जाने से यांग्टिसीक्यांग और कैन्टन प्रदेश एक हो गये हैं। इसी भाग में कारबार की अधिकता है और इसी भाग में चीन की सब से घनी आबादी बसी हुई है।

नानकिंग की सरकार

एशिया में रूस का सब से अधिक पूर्वी प्रदेश

रूस का सब से अधिक पूर्वी प्रदेश दो भागों में बँटा है। याकुट्स्क प्रजातन्त्र सब से अधिक बड़ा है। लेकिन इसकी जनसंख्या सब से कम है। सुदूर पूर्वी प्रजातन्त्र में कुछ आर्कटिक तट और समूचा रूसी प्रशान्त महासागर का तट शामिल है। इसी में इस प्रदेश की प्राकृतिक सम्पत्ति का कुछ भी उपयोग नहीं हुआ है। लेकिन अगली पंचवर्षीय योजना में रूस ने यहाँ कई रेलवे, कारखाने और व्लाडीवोस्टक के उत्तर में एक बड़ा बन्दरगाह बनाने का निश्चय किया है। मंचूरिया में जापानी प्रभुत्व हो जाने से

पूर्वी रूस

कमचटका प्रायद्वीप और आधा (उत्तरी) साखालिन द्वीप शामिल है। दक्षिणी आधा साखालिन द्वीप जापान के अधिकार में है। इस प्रदेश की राजधानी खबारोव्स्क नगर है जो अमूर नदी पर स्थित है। साखालिन के कोयले और मिट्टी के तेल को छोड़ कर रूस के इस प्रदेश को जापान का सदा भय लगा रहता है। इस समय केवल ट्रान्स साइबेरियन रेलवे इस भाग को दूसरे भागों से जोड़ती है। इसी से रूसी हवाई जहाजों का एक बड़ा अड्डा अचानक हमले को रोकने के लिये बनाया गया है।

चीन और जापान (१)

[लेखक—श्री रामशङ्कर अवस्थी एम० ए०]

भी स्पेन देश में युद्ध के काले काले बादल अग्निवर्षा कर ही रहे थे कि एकाएक पूर्व दिशा में घोर चीत्कार हुआ और देखते ही देखते चीन देश पर भी युद्ध का बवण्डर छा गया। वहाँ भी गोलियाँ सनसनाने लगीं, तोपें धुवाँ और आग उगलने लगीं और आकाश से हवाई यमदूत बमवर्षा करने लगे। सभी लोग अवाक् रह गये क्योंकि उसके पहले न वहाँ के नैतिक आकाश-मण्डल में देखने को बदली ही थी, न बादलों की घटा या बिजली। फिर यह एकाएक गड़गड़ाहट कैसी!!

उसी दिन से देश और विदेश के दैनिक समाचार पत्र चीन की करुण कहानी सुना रहे हैं, वहाँ के निवासियों की कुछ पिछले वर्षों की दुःखगाथा पर प्रकाश डाल रहे हैं। हम उसे पढ़ते हैं और पढ़ते पढ़ते उसमें तन्मय हो जाते हैं, और क्यों न हो जाँय जब हमारे पास भी चीनियों की तरह एक व्यथित हृदय है और एक लम्बी करुण कहानी। आइये, पाठकगण! हम आपको चीन और जापान की कहानी सुनाएँ।

हमारे देश के उत्तर-पूर्व चीन नाम का एक बड़ा विस्तृत देश है। उसमें पहाड़ियाँ भी हैं, मैदान और रेगिस्तान भी हैं। बड़ी बड़ी नदियाँ पश्चिम से पूर्व को ओर बहती हैं और देश को श्यामल शस्य खेतों की हरियाली से रंजित कर देती हैं। पहाड़ियों में कोयले, लोहे इत्यादि की खदानें हैं जिससे देश में किसी प्रकार की कमी नहीं। कदाचित् इसी कारण से वहाँ की जनसंख्या संसार के सब देशों से अधिक है। साथ साथ वहाँ के निवासी परिश्रमी हैं।

चीन के निवासियों को अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की प्राचीनता और उत्कृष्टता पर गर्व है। ईसा से लगभग ३००० वर्ष पूर्व फ़ूहसी नामक व्यक्ति के समय से उनके देश का इतिहास यथेष्ट रूप से प्राप्य है। तदनन्तर 'शेननुंग' और 'हाँगटी' नामक शासकों के अन्तर्गत चीन राज्य की सीमा बढ़ी और वहाँ की संस्कृति का विस्फूर्जन हुआ। इसके बाद वहाँ बहुत से राजवंशों का आवागमन हुआ। यहाँ तक कि ईसा की तेरहवीं शताब्दी में चीन वंश का ह्रास हुआ और देश तिमूजिन या चंगेज़ खाँ के चंगुल में आ फँसा।

चीन के इतिहास में इस मंगोल शासनकाल का एक विशेष स्थान है। इस समय में चीन देश के वैभव तथा सम्पन्नता से लालायित होकर देश देशान्तर के निवासी यहाँ आए और उनमें से कुछ यहाँ बस गये। इसका एक कारण और था। योरुप में यह 'क्रूसेड्स' (ईसाई और मुसलमानों का फ़िलस्तीन के लिये युद्ध) का समय था और धार्मिक उत्साह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। साथ साथ इटली के निवासी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत बढ़े चढ़े थे। मंगोलों के इस अभ्युदय काल में एशिया के व्यापारी मार्ग सुरक्षित थे। इस प्रकार ईसाई-धर्म प्रचार तथा नई नई बाज़ारों की आवश्यकता से प्रेरित होकर योरुप निवासी मंगोल राज्य की पश्चिमी सीमा तक आ चुके थे और अब समय पाकर चीन में भी घुस आये। मुसलमानों के विषय में भी ठीक यही कहा जा सकता है।

१३६८ ई० में चीनियों ने मंगोलों को मार भगाया परन्तु इससे विदेशियों के आने जाने का ताँता न टूटा। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में और सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में योरुप में नवीन सभ्यता तथा संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ और उस महाद्वीप ने उन्नति के शिखर पर चढ़ने के लिये लम्बे लम्बे डग भरना आरम्भ किये। वहाँ के वीर युवक अपने अपने जहाज लेकर 'नये संसार' को खोजने के लिये निकले और स्पेन, पुर्तगाल, डच इत्यादि चीन में अधिक संख्या में आ पहुँचे। रूस भी अपने पड़ोसी चीन के यहाँ अतिथि हुआ। यद्यपि उसका मित्र के यहाँ जाने का अभिप्राय था एक पिघले हुए समुद्र की खोज। इसके लगभग दो सौ वर्ष बाद योरुप में व्यवसायिक क्रान्ति हुई। अनेकानेक आविष्कार हुए, भाप ने अपनी जादूगरी दिखाई और संसार की काया पलट

दी। अब कोयला, लोहा इत्यादि अत्यावश्यकीय तथा बहुमूल्य वस्तुएँ हो गईं। चीन में सभी पदार्थ प्राप्य थे, भला फिर विदेशी इससे लाभ उठाने में कैसे चूक सकते थे।

चीनियों ने समय समय पर विदेशियों को निकालने के लिये नियम बनाये, परन्तु परिस्थितियों ने उनका साथ न दिया। इसके अतिरिक्त चीनियों ने भारी भूल की। उन्होंने परिवर्तनशील समय की इस तीव्र प्रगति के साथ क़दम न रक्खा और न पाश्चात्य संस्कृति की अच्छी बातों को अपनाया और न वहाँ के आविष्कारों से लाभ उठाने में उस तत्परता तथा पटुता का परिचय ही दिया जैसा जापान ने किया।

अब जापान पर भी एक दृष्टि डाल लीजिये, और फिर चीन और जापान की कहानी सुनिये। चीन के पूर्व में टापुओं की एक रेखा है। इनका नाम जापान है। यह न तो चीन के समान बड़ा ही है न वैसा उपजाऊ ही। परन्तु यहाँ की जनसंख्या इतनी अधिक है कि उसका निर्वाह यथेष्ट रूप में यहाँ नहीं हो सकता। पहले पहल चीन की तरह यहाँ भी पुर्तगाल और स्पेन के लोग आये और उन्होंने व्यापार और ईसाई-धर्म प्रचार करना आरम्भ किया। इसके बाद डच और अंगरेज़ आये।

पहले पहल ईसाई धर्म जापानियों को बहुत अच्छा लगा और दिन दिन उसका प्रचार बढ़ने लगा। उनके गिरजेघर बन गये, परन्तु ईसाईयों ने धैर्य्य तथा धार्मिक सहिष्णुता से काम न लिया। उन्होंने बौद्ध धर्म के मन्दिरों के ध्वंस की आज्ञा दी। 'ह्योटोमी हिडेयोशी' ने इससे असन्तोष प्रकट किया। उसने 'जेजूट मिशन' के नेताओं के सम्मुख अपने पाँच प्रश्न रक्खे—(१) जापान में ईसाई धर्म प्रचार करने के कारण (२) बुद्ध मूर्तियाँ और मन्दिर तोड़ने का अभिप्राय (३) पशु हिंसा का कारण (४) बौद्ध उपदेशकों के बध करने का कारण (५) जापानियों को गुलाम बना कर बेचने का कारण और उनके उत्तर से असन्तुष्ट होकर १५८७ ई० में ईसाई धर्म के प्रचार को रोक दिया, परन्तु उस समय स्पेन के निवासियों को अपनी सामुद्रिक शक्ति का घमण्ड था। वे बेधड़क ईसाई मत के प्रचार में दत्तचित्त रहे। १६३६ ई० में जापान की सरकार ने 'पार्थक्यतानियम' बनाये (Seclusion Decree of 17 Articles) जिसके अनुसार न विदेशी पादरी जापान में आ सकते थे और न जापानी बाहर जा सकते थे, परन्तु चीनी और डच व्यापारियों को जापान के साथ व्यापार करने का अधिकार रहा इसका एक प्रभाव यह हुआ कि डच लोगों ने जापान के विद्वानों को पाश्चात्य संस्कृति से परिचित किया और यूरुप के इतिहास, दर्शन शास्त्र, शासन प्रणाली, विज्ञान तथा युद्ध-कला कौशल के महत्व से उन्हें इतना मुग्ध कर लिया कि वे स्वयम् जापान की सरकार की पार्थक्यता नीति का विरोध करने लगे। परिणामतः जापानी सरकार ने ईसाई धर्म की पुस्तकों को छोड़ कर अन्य पुस्तकों पर से निषेध आज्ञा हटा ली और योरुप की ऐतिहासिक सामग्री और विज्ञान इत्यादि से जापान का ज्ञान भण्डार विस्तृत होने लगा। जापान भी अपनी सेना को विदेशी ढँग पर साजने लगा।

इसके बाद योरुप में व्यवसायिक क्रान्ति हुई और योरुप के राष्ट्रों के सामने जापानियों की एक न चली और उन्हें अपने देश के द्वार खोलने पड़े। जापानियों ने योरुप के आविष्कारों को, वहाँ की संस्कृति को, यथेष्ट रूप से अपनाया और अपनी शक्ति को संगठित कर भावी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के लिये तैयार किया जिससे धीरे धीरे जापान भी संसार के एक शक्तिशाली राष्ट्र में परिणत हो गया।

विषय प्रवेष करने के पूर्व आवश्यक है कि हम इस प्रकरण में प्रयुक्त गोलमोल सङ्केतों का परिचय दे दें क्योंकि चीन की गाथा अन्तर्राष्ट्रीय चालबाज़ी की गाथा है। चीन में विदेशियों की सत्ता दिन दूनी रात चौगुनी बलवती होती गई। उन्होंने अपनी शक्ति संगठित कर चीन में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त किये और फिर उनकी आड़ में चीन का शिकार करने लगे। यहाँ हम उनमें से कुछ अधिकारों का संक्षिप्त विवरण देंगे।

(अ) Extra-territoriality (चीन में विदेशियों के साथ विशेष व्यवहार) इसके अनुसार विदेशी चीन में भी अपने विदेश के क़ानून के अनुसार आचरण कर सकता है। उसे चीन में चीन के नियम मानने की आवश्यकता न थी। यदि वह चीन में, चीनी के विरुद्ध अपराध करे तो उसका न्याय उसी के देश

के क़ानून के अनुसार विदेशी कचहरी में किया जायगा और चीन के निवासी को उस कचहरी का फैसला स्वीकार करना होगा।

(ब) Open Door Policy (खुले द्वार की नीति) चीन देश में प्रत्येक राष्ट्र बिना किसी भेद भाव के व्यापार कर सके। चीन की सरकार किसी देश या राष्ट्र को चीन में व्यापार करने से नहीं रोक सकती है और न किसी एक के साथ कोई विशेष रिआयत ही कर सकती है।

(स) चीन में वहाँ की सरकार से विदेशी शक्तियों ने निन्नानवे वर्षों के लिये कुछ स्थान लिये जिनका कि वे कुछ भी लगान वहाँ की सरकार को नहीं देते। इसके अतिरिक्त अम्वाय, कैन्टन, चिंगकियांग, हांग-चाऊ, हाङ्को, किउकियाँग, न्यूचाँग शाँघाई, सूचाऊ, टिंटसिन में विदेशी शासन थे, परन्तु शासक-शक्तियाँ चीन सरकार को वार्षिक कर देती थीं (Concessions and Settlement)।

चीन और जापान का प्रारम्भिक सम्बन्ध

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीन का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। उसमें दो प्रकार के देश थे। एक तो वे जो पूर्णरूप से चीन के आधीन थे, दूसरे वे जो चीन को वार्षिक कर देते थे जैसे कोरिया, फार्मोसा और र्‌यूकू टापू इत्यादि।

हम पहले कह चुके हैं कि सत्रहवीं और अठा-रहवीं शताब्दियों में चीन के निवासियों को जापान के साथ व्यापार करने का विशेष अधिकार था। उन्नीसवीं शताब्दी में जब जापान की सरकार को पार्थक्यता का नियम हटा लेना पड़ा, तब अन्य राष्ट्रों के समान जापान की इच्छा हुई कि वह भी अपनी अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता को बढ़ावे। परिणामतः उसने भी अन्य राष्ट्रों के समान चीन से व्यापारिक सन्धि की बातचीत आरम्भ की। जापान का मुख्य अभिप्राय था कि उसे भी चीन से वही अधिकार मिल जाय जो वहाँ अन्य राष्ट्रों को प्राप्त थे। चीन की सरकार ने जापान में चीन के लिये भी उसी प्रकार के अधिकार की मांग रक्खी। फलतः १३ सितम्बर १८७१ ई० को चीन जापानमें 'समता तथा पारस्परिकता' (Equality and Reciprocity) के सिद्धान्तों के आधार पर सन्धि हो गई। जापान में इस सन्धि के विरूद्ध अस-न्तोष की लहर फैली इसके मुख्य दो कारण थे—एक तो यह कि चीन में जापानी लोग बिना रोक हथियार लेकर नहीं चल सकते थे। अस्तु जापानी सरकार ने दो साल तक सन्धि पर हस्ताक्षर न किये परन्तु सन् १८७३ में कोरिया, फार्मोसा और र्‌यूकू की समस्याओं के कारण उन्होंने सन्धि स्वीकार कर ली।

र्‌यूकू द्वीप — हम कह चुके हैं। कि र्‌यूकू द्वीप के शासक चीन को वार्षिक कर देते थे। परन्तु जापानी सरकार का कहना था कि वहाँ के शासक एक जापानी घराने के हैं। और र्‌यूकू जापानी सरकार के आधीन होना चाहिये। १८७१ ई० में र्‌यूकू के कुछ निवासियों की फार्मोसा वालों ने हत्या कर डाली। चीन सरकार ने इसमें कुछ हस्तक्षेप न किया। जापान भला इस अवसर को कब जाने देने वाला था। १८७२ ई० में जापानी सरकार ने र्‌यूकू के शासक 'शो टाई' को लार्ड की पदवी दी और र्‌यूकू पर अपनी संरक्षता का अधिकार घोषित किया और यों धीरे धीरे सन् १८७५ ई० में 'र्‌यूकू' के शासक को आज्ञा दी कि वह चीनको कर देना बन्द कर दे। इसके चार वर्ष उपरांत जापान की सरकार ने मार्च १८७९ ई० में वहाँ के शासक से सब अधिकार ले लिये।

चीन ने इस घोर अन्याय का विरोध किया। जापान ने 'र्‌यूकू' के दो दक्षिणी टापू चीन को देना स्वीकार किया यदि चीन सरकार चीन में जापानियों को वही अधिकार दे दे जो वहाँ अन्य राष्ट्रों को प्राप्त थे। चीन सरकार ने उसे स्वीकार कर लिया परन्तु बाद में जापान ने इसमें भी आनाकानी की। चीन इस समय आन्तरिक कठिनाइयों और दक्षिण में फ्रांस और उत्तर में रूस से टक्करें ले रहा था और जापानियों की मित्रता का कांक्षी था। अतः उसने जापान को चीन में व्यापारिक अधिकार भी दे दिये और 'र्‌यूकू' पर जापान का शाब्दिक आधिपत्य भी स्वीकार कर लिया। इस घटना से जापान की उस कूटनीति का श्रीगणेश होता है जिसके द्वारा उसने एक ओर चीन को अपने व्यापारिक शिकंजों में कसना आरम्भ किया और दूसरी ओर उसके राज्य को निगलने में प्रयत्नशील हुआ।

"र्यूकू" का यह हाल हुआ, अब फार्मोसा पर दृष्टिपात कीजिये। जापान की दयालुता की पराकाष्ठा तो देखिये कि फार्मोसा के असभ्य निवासियों ने "र्यूकू" के ५४ मनुष्यों की हत्या कर डाली, इससे जापानी सरकार का हृदय विदीर्ण हो गया। उसने फार्मोसा पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेज दी। अमेरिका और ग्रेट ब्रूटेन ने इसका विरोध किया, परन्तु जापान कब सुनने वाला था। उसने फार्मोसा में बड़ी मारकाट मचाई। चीन ने अपने साम्राज्य पर इस जापानी आक्रमण को न्याय विरुद्ध बताया। जापान का कहना था कि इस आक्रमण में चीन सरकार की सम्मति थी। बहुत वाद विवाद के बाद चीन को जापान के आगे मस्तक नवाना पड़ा, क्योंकि वह युद्ध के लिये तैयार न था। ३१ अक्टूबर १८७४ ई० में पीकिंग की सन्धि हुई जिसके अनुसार चीन ने जापान को ५००,००० टेल तावान दिया और आक्रमण को न्यायपूर्ण स्वीकार किया और दोनों राष्ट्रों ने वादा किया कि वे फार्मोसा सम्बन्धी द्वेष-पूर्ण चिट्ठी-पत्री जला देंगे जिससे भविष्य में उनमें पारस्परिक वैमनस्य न रहे।

फार्मोसा

साथ साथ कोरिया का हाल भी सुन लीजिये। सन् १३९२ ई० से कोरिया 'यो' नामक राजवंश के शासन में था। सन् १८६४ ई० में इस वंश के 'चुन चाँग' नामक शासक की मृत्यु के उपरान्त कोरिया के सिंहासन पर 'मिंग बाक्स' नामक राजकुमार बैठा। उसने 'मिन' वंश की राजकुमारी से विवाह किया

कोरिया

कोरिया का राज्य चीन देश के अधीन था। यों तो कोरिया की नीति सदा से अलग रहने की थी जिस कारण उसे 'संन्यासी राज्य' (Hermit kingdom) कहते हैं. परन्तु इस समय चीन की विदेशी-विरोध की भावना का प्रभाव कोरिया पर भी पड़ा और वहाँ प्रथकता तथा विदेशी-विरोध के भाव जागृत हुए। जापान इस समय चीन का विरोध 'र्यूकू' और फार्मोसा में कर रहा था। उसने कोरिया में भी उसी नीति का अनुसरण किया। उसका कथन था कि 'जापान पर जितने आक्रमण हुए हैं वे या तो कोरिया ने किये हैं या कोरिया में होकर हुए हैं। यदि कोरिया किसी अन्य शक्ति के आधीन रहेगा तो जापान को कोरिया के निकट होने के कारण भय रहेगा अतः कोरिया को स्वतन्त्र होना चाहिये। इसके अतिरिक्त १८६८ ई० में जापानी सरकार ने कोरिया के द्वार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये खोलने के अभिप्राय से अपने एक राजदूत को कोरिया भेजा परन्तु वहाँ की सरकार ने राजदूत के सन्देश को सुनने तक से इन्कार कर दिया। १८७२ ई० में जापान ने फिर इसी अभिप्राय से व्यापारिक सन्धि करने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई सफलता प्राप्त न हुई।

जापान में कोरिया की इस नीति से असन्तोष की भावना फैली। कुछ लोगों ने यह सम्मति दी कि कोरिया के द्वार खोलने के लिये युद्ध किया जाए, परन्तु इस मत के विरोधियों का पक्ष बली रहा। चीन-जापान में इस विषय पर वाद-विवाद हुआ। परन्तु वहाँ की सरकार ने यह बात स्पष्ट कर दी कि यद्यपि चीन कोरिया को अधीन-राज्य अवश्य समझता है, परन्तु वहाँ की अन्दरूनी नीति, तथा युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। जापान की सरकार चीन के इस उत्तर से बहुत असन्तुष्ट हुई, फिर भी वह कोरिया से सन्धि करने में प्रयत्नशील रही।

इसी समय कोरिया में दो दल हो गये। 'टैवानकुन' का दल विदेशियों से सन्धि करने का कट्टर विरोधी था और तलवार की नोक पर इस नीति का विरोध करने को उद्यत था, परन्तु इसके विपरीत एक दूसरा पक्ष था जिसकी प्रधान नेत्री कोरिया की 'मिन' रानी स्वयम् थीं। यह दल कोरिया के द्वार विदेशियों के लिये खोलने को उद्यत था। जापान के सौभाग्य से इस समय रानी के दल की विजय हुई और जापान और कोरिया में २७ फरवरी सन् १८७६ ई० में 'याँघवा' नामक स्थान पर सन्धि हुई। उसकी शर्तें निम्नलिखित थीं :—

(१) जापान कोरिया की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार करता है।

(२) कोरिया के जेन्ज़न और चिमल्पो नामक बन्दर व्यापार के लिये खोल दिये जाएँ और 'फ्यूज़न' में जापान को ज़मीन मिले।

(३) जापानियों को कोरिया में 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियलिटी' का अधिकार दे दिया गया, परन्तु कोरिया वालों को जापान में इसी प्रकार के अधिकार मिलने को कोई चर्चा न हुई।

(४) जापानियों को कोरिया का सामुद्रिक किनारा नापने का अधिकार मिल गया।

(५) जापान को कोरिया में व्यापारिक स्वतन्त्रता मिल गई।

हमारे पाठक स्वयम् बड़े विज्ञ हैं। वे इस सन्धि से जापान की कूटनीति का परिचय पा गये होंगे। जापान ने कोरिया का मार्ग सभी राष्ट्रों के डाके के लिये खोल दिया। १८८२ ई० में अमरीका, १८८३ में अँगरेज और जर्मन, १८८४ में रूस और इटली और १८८६ में फ्रांस ने भी इसी प्रकार के अधिकार प्राप्त किये। इसके अतिरिक्त कोरिया को स्वतन्त्र देश स्वीकार किया और उसको निगल जाने के लिये तैयारी की।

इसके बाद कोरिया में जापान और चीन ने अपना अपना सिक्का जमाना चाहा और वहाँ की अशान्ति और दलबन्दियों से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। वे अपने इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये कभी कूटनीति का प्रयोग करते थे और कभी रणभेरियाँ भी बजा देते थे। हम स्थानाभाव से इस लम्बी गाथा को यहाँ नहीं दे सकते।

कुछ समय योंही टक्करें लेने के बाद १८ अप्रैल १८८५ ई० में दोनों राष्ट्रों में टेन्टसिन की सन्धि हो गई। चीनी और जापानी सरकारों ने कोरिया से चार महीनों के अन्दर अपनी अपनी सेनाएँ लौटा लेने का वचन दिया। दूसरे जब चीन या जापान कोरिया में सेना भेजना आवश्यक समझेंगे तो वे एक दूसरे को सूचना दे देंगे। चीन को यद्यपि इस सन्धि के मानने में आपत्ति थी क्योंकि इसे स्वीकार करने का अर्थ था कोरिया की स्वतन्त्रता स्वीकार कर लेना, परन्तु उसकी बेचारे की 'मरता क्या न करता' की दशा थी। दक्षिण में उसे फ्रांसीसियों से टक्कर लेनी थी और उत्तर में रूसियों का सामना करना था। इस प्रकार की एक पक्ष की सन्धि चीन और जापान के प्रश्नों को सुलझा न सकी। उनमें पारस्परिक विद्वेष की आग धधकती रही जो किसी भी समय प्रज्ज्वलित हो सकती थी।

चीन और जापान की पहली लड़ाई

सन् १८८५-१८९४ ई० तक के समय में कोरिया में चीन का प्रभुत्व बहुत बढ़ गया और उसके सामने जापान की एक न चली जिससे उसका वैमनस्य चीन के प्रति बढ़ता जाता था और वह किसी ऐसे अवसर की खोज में था कि चीन से बदला ले।

जो लड़ने पर उतारू हो उसके लिये अवसर दूर नहीं होता। नितान्त १८९४ ई० में कोरिया में 'टाँगहक' लोगों ने विद्रोह की पताका फहराई। यह विद्वानों की एक संस्था थी जो कोरिया को विदेशी सत्ता की जंजीरों से विमुक्त करना चाहती थी। १८९३ ई० में उन्होंने सियोल पर अपना अधिकार जमाया परन्तु शीघ्र ही विद्रोह-दमन हुआ। दूसरे वर्ष 'टाँगहक' ने फिर ज़ोर मारा और अपनी शक्ति को संगठित कर उन्होंने कोरिया सरकार की सेना पर विजय पाई और कोरिया की राजधानी पर आ टूटे।

टाँगहक का विद्रोह

चीन भी जापान की भाँति इसी प्रकार के अवसर की खोज में था। भाग्य से कोरिया की सरकार इसी समय उस से सहायता भी माँग बैठी। फिर क्या था, चीन सरकार ने जापान को सूचना दी कि वह अपने 'कर देने वाले' कोरिया के राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिये सेना भेज रही है और वहाँ की अराजकता को दमन करके वह अपनी सेना वापस बुला लेगी। सेना भेजने की सूचना से जापानी सरकार इतना असन्तुष्ट न हुई जितना कि कोरिया को आधीन-राज्य बतलाने से। जापान के मंत्री 'मत्सू' ने चीन की सरकार को लिख भेजा कि 'जापान कोरिया को चीन का आधीन राज्य मानने में उससे कभी सहमत नहीं हो सकता'। साथ ही 'मत्सू' ने यह भी लिख भेजा कि जापान भी कोरिया में जापानियों के रक्षार्थ एक छोटी सी सेना भेज रहा है।

इस प्रकार चीन और जापान की सेनाएँ कोरिया पहुँच गईं। उनके पास अस्त्र शस्त्र थे और लड़ने के लिये उत्साही हृदय भी थे। दूसरी ओर दोनों देशों में सन्धि की बात चीत भी हो रही थी।

'वाइकाउन्ट मत्सू' ने चीन के सामने जापान की कुछ शर्तें रक्खीं—(१) कोरिया के विद्रोहियों को चीन और जापान की सेनाएँ मिल कर पराजित करें। (२) चीन और जापान का एक कमीशन कोरिया में आर्थिक, फ़ौजी तथा शासन सम्बन्धी सुधारों की आयोजना करे। (३) यदि चीन इन्हें मानने में सहमत न हो तो जापान अकेले कोरिया की शोचनीय दशा का सुधार करे। चीन ने इसके उत्तर में कहा कि कोरिया में चीन-जापान सहयोग की आवश्यकता नहीं क्योंकि कोरिया में अब कोई अशान्ति नहीं है। दूसरे यदि कोरिया सरकार सुधार करना चाहती है तो वह स्वयम् सुधार करे। जापान को इस में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। बात ठीक थी, परन्तु जापान ने एक न सुनी। चाहे कोरिया के निवासी चाहें या न चाहें, वहाँ की सरकार जापान के एहसान को माने या न माने परन्तु कोरिया का हितू जापान उसका उद्धार करने और बेड़ा भवसागर के पार लगाने पर कमर कस चुका था। पाठको, ज़रा इस निस्पृहता, इस निष्काम कर्म तथा इस सेवा-भाव की ओर ध्यान तो दीजिये।

चीन और जापान का यह मतभेद बलवान होता गया। २८ जून को 'ओटोरी' ने कोरिया की सरकार से पूछा कि कोरिया चीन का आधीन-राज्य है या स्वतन्त्र। दांतों के मध्य जिह्वा के समान कोरिया-सरकार की स्थिति थी। यदि वह कहती 'आधीन' तो जापान असन्तुष्ट होता था, यदि कहती स्वतन्त्र तो उसे चीन से भय था। उसने भी गोलमोल उत्तर दिया। जापान ने कोरिया के सुधार के लिये एक कमीशन नियुक्त कर दिया।

कोरिया में चीन और जापान की सेनाएँ डटी रहीं, यहाँ तक कोरिया की सरकार ने विदेशी शक्तियों से विनय किया कि वे अपनी सेनाओं को साथ साथ जाने की सम्मति दें, परन्तु उनमें कोई हटने के लिए तैयार नहीं था। जापान कहता था कि चीन की सेना पहले जाए और चीन कहता था कि जापान। अन्त में जापान का धैर्य्य जाता रहा। उसने १९ जुलाई को कोरिया सरकार के सामने यह मांगे रक्खीं (१) सियोल और फ़्यूजन के बीच जापान को एक बिजली से चलने वाली रेल बनाने की आज्ञा मिले। (२) १८८२ ई० की जापान-कोरिया सन्धि के अनुसार जापानी सेना को रहने का स्थान दिया जाए। (३) कोरिया से चीन की सेना बाहर निकाल दी जाए। उत्तर के लिये कोरिया को तीन दिन की अवधि मिली। कोरिया का गोलमोल उत्तर पाकर २३ जुलाई को जापानी सेना ने राजधानी में प्रवेश किया, राज महल पर अधिकार कर लिया और 'टै वान् कुन' को वहाँ का प्रधान मंत्री बनाया। ओटोरी की सम्मति से सुधार होने लगे। चीन-कोरिया की वे सन्धियां रद्द कर दी गईं जिनमें कोरिया ने चीन का आधिपत्य स्वीकार किया था और जापान की सरकार के पास प्रार्थना-पत्र भेजा गया कि कोरिया से चीन की सेना निकाल भगाने के लिये उसकी सहायता दे। अब युद्ध के अतिरिक्त और कोई साधन न था।

पहली अगस्त को दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे के प्रति युद्ध की घोषणा कर दी। सभी विदेशियों ने युद्ध की ओर अपनी उदासीनता की भावना प्रकट की। लग भग एक वर्ष तक युद्ध हुआ। कभी चीन की विजय हुई कभी जापान की, परन्तु अन्त में जापान का प्राबल्य रहा और जरमनी रूस और फ्रांस के प्रयत्नों के बाद १७ अप्रैल १८९६ ई० को दोनों राष्ट्रों में शिमोनीस्की नामक स्थान पर समझौता हुआ। शर्तें निम्नलिखित थीं—(१) चीन ने जापान की तरह कोरिया की स्वतन्त्रता स्वीकार की। (२) चीन ने फ़ार्मोसा और 'पेस्कैडोरेस' जापान को दे दिये। (३) चीन ने सात वर्षों के अन्दर २००,०००,००० टेल तावान देना और ५ प्रतिशत व्याज देना स्वीकार किया और 'वो हाइवी' ज़मानत के रूप में ७ वर्ष के लिये दिया। (४) चीन ने 'शिआइ' सूचाऊ, और हांगचाऊ में जापान को व्यापार करने का अधिकार दे दिया और याँगटिसी नदी के कुछ भाग में जापान को नाव चलाने का अधिकार दे दिया। (५) ऊपर बताए गए बन्दरों में जापान को हर प्रकार की व्यवसायिक स्वतन्त्रता तथा 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियालिटी' के अधिकार मिल गये। इस के बाद रूस की कूटनीति से जापान ने 'लियोटंग' का देश चीन को दे दिया। इस सन्धि से चीन को कोरिया की स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। जापान ने कोरिया में अपने पैर मज़बूती से जमा लिये और अन्य राष्ट्रों

को पहली चुनौती दी, परन्तु इस सन्धि ने जापान का कोरिया में सुधार करने का अधिकार निश्चित नहीं किया।

इस सन्धि के बाद चीन तो कोरिया से सदा के लिये चला गया परन्तु जापान भी शान्त पूर्वक वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित न कर सका। चीन की विदाई के साथ रूस का आगमन हुआ। जापान ने देखा कि रूस के मित्र रहने में कल्याण है और दोनों में पीटर्सबर्ग की सन्धि हो गई। तत्पश्चात् रूस-जापान में वैमनस्य भी बढ़ता गया और अन्त में उन दोनों राष्ट्रों में भी युद्ध हुआ। बड़ा-लोमहर्षण युद्ध हुआ और लगभग १२०,००० जापानी काम आए। फिर उनमें पोर्टस माउथ की सन्धि (१९०५) में हो गई, जिससे कोरिया में जापान की स्थिति अधिक दृढ़ हो गई और धीरे धीरे १९१० में जापान ने कोरिया को निगल ही लिया। जिसका हम आगे वर्णन करेंगे।

मंचुको की स्थापना (२)

मोनीस्की की सन्धि से चीन की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। उसके सम्मुख एक बहुत उत्कट समस्या उपस्थित हुई—शीघ्रातिशीघ्र जापान का समस्त तावान अदा कर देना। जापानी फौजें अभी 'लियोटंग' में पड़ी थीं और तावान अदा होने पर ही हट सकती थीं, परन्तु चीन के पास देश को मुक्त करने के लिये धन न था और ऋण लेने की आवश्यकता थी।

ऋण देने वाले महाजनों की कमी न थी। योरुप के चार महान राष्ट्र ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थे। चीन को विवश होकर उनकी ओर हाथ फैलाना पड़ा। हाथ बढ़ाते ही रूस, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी ने चीन पर धन की वर्षा की और चीन ने जापान का ऋण पटा दिया।

अब कृपणता की करामात देखिये। चीन की छाती पर से जापान तो हटा पर अब एक के स्थान में चार महाजन-राष्ट्र उस पर आकर सवार हुये। उन्होंने चीन के सामने अपने अपने विशेष अधिकार और रियायतों की माँगें रक्खीं और अनुभवी महाजनों के समान उससे चालबाजी और चाटुकारी की बातें करने लगे। बेचारे चीन को चारों को सन्तुष्ट करना पड़ा।

रूस इनका अगुवा बना। पीकिंग के रूसी मन्त्री ने चीनी नेताओं से कहा कि चीन रूस की सहायता से ही जापान से बदला ले सकता है और इसके लिये सब से बड़ी आवश्यकता है उत्तरी मंचूरिया से व्लाडीवास्टक तक रेल का होना। शत्रुदमन की इस मीठी बात ने चीन सरकार पर जादू का सा असर किया। २२ मई १८९६ ई० में रूस और चीन में एक गुप्त-सन्धि (Li-libonoft Secret Treaty) हुई जिसके अनुसार चीनी सरकार ने उत्तरी मंचूरिया में व्लाडीवास्टक तक रेल बनाने की सम्मति दे दी। (२) रूस इस रेल से युद्ध और शान्ति के समय सेना तथा खाद्य पदार्थ लाये। (३) युद्ध के समय चीन के बन्दरों पर रूस के जहाज जा सकते थे। (४) यदि जापान पूर्वी एशिया, चीन या कोरिया पर चढ़ाई करे तो रूस उसकी सहायता करे। (५) एक दूसरे की सम्मति के बिना उनमें से कोई राष्ट्र विपक्षी राष्ट्र से सन्धि न करे।

इसके दो वर्ष बाद रूस ने चीन के सामने एक दूसरी माँग रक्खी जिसके अनुसार उसे २५ वर्ष के लिये लगान पर दक्षिणी 'लियोटंग' जिसमें पोर्टआर्थर और टैलियनवान् नामक नगर और बन्दर स्थित थे मिल गये और वहाँ रेल बनाने की आज्ञा भी मिल गई। इन रेलों के बन जाने से रूस की स्थिति मंचूरिया में दृढ़ हो गई। अब उसे मंचूरिया में रूसी फौज लाने के लिये बस किसी बहाने की आवश्यकता थी।

ऐसे अवसर पर भला जर्मनी कब चूकने वाला था। उसने भी चीन सरकार से इसी प्रकार की बात-चीत आरम्भ की। इसी बीच शैण्टङ्ग के 'किआचांग' नामक नगर में दो जर्मन पादरियों की हत्या हो गई। बस, फिर क्या था, जर्मन जहाजी बेड़ा 'किउचाउ'

की खाड़ी में होकर किउचाउ जा पहुँचा और अराजकता को शान्त करने के बहाने उस नगर पर अधिकार कर लिया। जब पादरियों का मामला तय हो गया तो जर्मनी ने चीन के सामने अपनी 'किउचाउ' की माँग रक्खी। रूस और फ्रांस ने जर्मनी के इस अन्याय-पूर्ण आचरण पर कुछ न कहा। बेचारे चीन को विवश होकर जर्मनी की माँग भी पूरी करनी पड़ी और ६ मार्च १८९८ ई० को उसने जर्मनी को ९९ वर्ष के लिये किउचाउ लगान पर दे दिया। इसके अतिरिक्त उसने उसे शैनटंग में दो रेलें बनाने की भी आज्ञा दे दी। जर्मनी ने कुछ ही समय में वहाँ के बन्दर को ठीक करवा लिया, जिसमें उसका जहाज़ी बेड़ा रुक सके और रेलों का बनवाना भी आरम्भ कर दिया।

इसी प्रकार फ्रांस ने भी ९९ वर्षों के लिये क्वाँगचाउ ले लिया और 'नानिंग से पखोई' तक रेल बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। सन् १८९८ ई० में ग्रेट ब्रिटेन ने भी 'वीहाईवी' और 'कोलून' (हाँगकाँग के सामने) नामक स्थान उन्हीं शर्तों पर प्राप्त किये। इसके बाद १८९८ ई० में रूस और फ्रांस के प्रोत्साहन देने पर बेल्जियम ने पीकिंग से हाँकाऊ तक रेल बनाने का ठेका ले लिया। इसके अतिरिक्त अमेरिकन चीन डेवलपमेन्ट कम्पनी को हांकाऊ से कैन्टन तक अँगरेज़ों को पीकिंग से मुकडेन तक, और शांघाई से नानकिंग तक, और फ्रांस को "हैनोई" से टांकिंग, टांकिंग से लओकाई, लओकाई से 'यूनानफू' तक, की के ठेके मिल गये। जापान मूकभाव से यह कौतुक देखने में बिवश था। कोरिया में अब उसको चीन के स्थान में रूस के समान बलवान् शक्ति का सामना करना था और वह इसमें तन्मय था।

इस प्रकार चीन अब विदेशियों के शिकंजे में फँस गया था। इसके कुछ हितकारक परिणाम भी हुए। पहला तो यह कि चीन संसार के बहुत से राष्ट्रों के स्वार्थ का क्षेत्र बन गया जिससे कोई एक राष्ट्र अकेला उसकी स्वतन्त्रता का नाश नहीं कर सकता था क्योंकि इससे उन सब की स्वार्थ-सिद्धि में बाधा पड़ती। दूसरे यह कि रेलों के हो जाने से चीन के समान विस्तृत देश में एकता की भावना का संचार हुआ और चीनियों के हृदय में भी अन्य राष्ट्रों के समान सुधार करने की उमंग उठी। तीसरे चीनियों के हृदयों में विदेशी विरोध के भाव भी प्रज्वलित हो उठे।

फलतः भिन्न भिन्न राष्ट्रों में वाद-विवाद उठा कि चीन के द्वार प्रत्येक राष्ट्र के लिये खुले (Open Door Policy) रहने चाहिये जिससे वहाँ प्रत्येक राष्ट्र को समान व्यापारिक सुभीते मिलें। हम इस स्थान पर इस प्रकरण का विस्तृत विवरण देना उचित नहीं समझते, केवल इतना बतला देना चाहते हैं कि ६ सितम्बर १८९९ ई० में अमेरिका के 'सेक्रेटरी आफ स्टेट' 'जान हे' ने अपने प्रतिनिधियों द्वारा ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, रूस, जापान, इटली, फ्रांस की सरकारों के पास पत्र भेजा जिनमें निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया—

(१) चीन में कोई शक्ति, किसी दूसरी शक्ति के स्थान में या सत्ता के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करेगी।

(२) चीन की चुंगी की दर हर एक बन्दर में (माफ़ी बन्दरों के अतिरिक्त) एक ही हो।

(३) विदेशी जहाज़ों का कर, और विदेशियों से रेलों का किराया उतना ही लिया जाये जितना चीन अपने देश के जहाज़ों से और अपने देश के निवासियों से ले।

हम कह आये हैं, कि चीन में विदेशी-विरोध के भाव जागृत हो चुके थे और समय की प्रगति के साथ उन्होंने भीषण रूप धारण कर लिया। देश में कृपणता छाई ही हुई थी। साथ साथ नदियों में बाढ़ें भी आ गईं। देश में अशान्ति फैली और विदेशी-विरोध की भावना ने भी ज़ोर पकड़ा। फलतः चीन में विदेशियों के विरुद्ध एक भीषण विद्रोह फैला जो इतिहास में 'मुक्का मार विद्रोह' के नाम से प्रसिद्ध (Boxe's Rising) है। कितने ही विदेशियों के प्राण गये, रेल और तारों का ध्वंस हुआ। १३ जून को पीकिंग और उसके दूसरे दिन टेन्टसिन विद्रोहियों के अधिकार में आ गया। पीकिंग से विदेशी प्रतिनिधि निकाल दिये गये। उसी दिन चीन की महारानी ने विदेशियों पर युद्ध की घोषणा करवा दी। बड़ा लोमहर्षण युद्ध हुआ और अगणित विदेशी मारे गये।

विदेशियों ने विवश होकर जापान से सहायता माँगी। जापानी फ़ौजें शीघ्र चीन आ पहुँची, कुछ ही दिनों में अन्य राष्ट्रों की सेनाएँ भी आ मिलीं। रूस की सेना ने समस्त मंचूरिया पर अधिकार कर लिया। चीन की हार हुई। अन्त में ७ सितम्बर १९०१ को सन्धि हुई। चीन ने भिन्न राष्ट्रों को ४५०,०००,००० टेल तावान देना स्वीकार किया जिसमें जापान का भाग बहुत कम था।

कोरिया में रूस का वैभव दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था। यह देख कर जापान के हृदय पर मानों साँप लोट गया। उसका विचार था कि चीन को निकाल भगाने के बाद कोरिया में जापानी 'घर जानी मन मानो' कर सकेंगे परन्तु अब उसे एक महान्, संगठित राष्ट्र से टक्कर लेनी थी। निदान, ३० जनवरी १९०२ ई० में जापान ने अँगरेजों से सन्धि कर ली जिसके अनुसार उन्होंने 'चीन और कोरिया के साम्राज्यों की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का अनुष्ठान किया', दूसरे, दोनों देश इन साम्राज्यों में प्रत्येक राष्ट्र के लिये समान व्यापारिक सुभीते प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे, तीसरे दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे को वचन दिया कि वे, ग्रेट ब्रिटेन के उन विशेष अधिकारों को जो उसने चीन में प्राप्त किये हैं और जापान के उन विशेष अधिकारों को जो उसने कोरिया में प्राप्त किये हैं, अन्य राष्ट्रों के आक्रमणों से या चीन की अशान्ति और अराजकता से सुरक्षित रक्खेंगे।

अमेरिका और जरमनी ने इस सन्धि का समर्थन किया परन्तु रूस ने इसका घोर विरोध किया। और मार्च के महीने में फ्रांस के साथ एक समझौता किया जिससे उन्होंने चीन और कोरिया में फ्रांस और रूस की स्थिति को उसी प्रकार दृढ़ कर लिया।

हम कह चुके हैं, चीन में 'मुक्कामार' विद्रोह के समय में रूस ने मञ्चूरिया पर अधिकार कर लिया था। विद्रोह-दमन हो जाने पर उसने दक्षिणी मंचूरिया से अपनी सेना लौटा ली, परन्तु उत्तरी मंचूरिया से सेना नहीं हटाया और उसे कम करने के स्थान में बढ़ाता रहा। उसकी इच्छा थी कि मंचूरिया को अपने देश में मिला कर अमूर नदी को रूस और चीन की प्राकृतिक सीमा बनावे। जापान ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका ने इसका विरोध किया। इसी समय रूस-जापान में सन्धि हुई जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। इससे रूस ने चीन से समझौता किया जिसके अनुसार वह धीरे धीरे तीन बार में अपनी सेना हटा ले जाने को तैयार हो गया, परन्तु बाद में इसका उल्लंघन किया।

जापान को यह अच्छा न लगा। वह रूस के मंचूरिया के अधिकार से उतना ही असन्तुष्ट था जितना उसके कोरिया के प्रभुत्व से। इन समस्याओं के सुलझाने का बस एक ही मार्ग था—जापान-रूस युद्ध और सन् १९०४ में ऐसा ही हुआ।

युद्ध के बाद वही हुआ जो युद्धों के बाद होता है। सन् १९०५ ई० की पोर्ट्समाउथ की सन्धि या समझौता हुआ जिसका प्रभाव रूस पर बुरा पड़ा, उसको मंचूरिया खाली करना पड़ा। कोरिया में जापान का बोल बाला हो गया। इसके अतिरिक्त उसे चीन में रूस का 'कान्टँग' नामक स्थान, जिसमें पोर्ट आर्थर और डेरिन स्थित थे, मिल गए।

रूस की सत्ता के ह्रास होने से चीन और जापान एक बार फिर आमने सामने आ गए, अब मंचूरिया की बारी थी। जापान ने मंचूरिया में भी उसी नीति का अनुसरण किया जिसका उपयोग उसने चीन के विरुद्ध कोरिया में किया था। नवम्बर १९०५ ई० में चीन-जापान में पीकिंग की सन्धि हुई जिसके अनुसार उसने पोर्ट्समाउथ की सन्धि स्वीकार की। इसके अतिरिक्त चीन के १६ नये शहर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए खोल दिये गए। जापान को 'मुकडेन और अनटङ्ग के बीच एक फ़ौजी रेल बनाने की आज्ञा मिली। रेल के गार्ड बुला लेने के विषय में जापान ने कहा कि वह ऐसा करना तब स्वीकार करेगा जब रूस भी अपने गार्डों को बुला लेना स्वीकार कर ले, मंचूरिया में शान्ति स्थापित हो जाय और चीन विदेशियों के जन और धन की रक्षा करने के योग्य हो जाय। जापान को इसी प्रकार रेल तथा अपनी जागीर की रक्षा करने के अन्य अधिकार मिले।

मंचूरिया का प्रश्न

यह योरुप में बड़ी उथल-पुथल का समय था। इंगलैंड, फ्राँस, रूस इत्यादि जरमनी की शक्ति को बढ़ने देना नहीं चाहते थे, जापान ने भी जरमन-

विरोधी राष्ट्रों का साथ देने का विचार किया क्योंकि इसमें उसका हित था। जरमनी की पराजय तथा पतन होने पर उसे आशा थी कि चीन में जरमनी के स्थान जापान को मिल जाएँगे। ग्रेटब्रिटेन-जापान में सन्धि हो ही चुकी थी। जापान ने फ्रांस से भी उन्हीं शर्तों पर सन्धि कर ली। कुछ ही दिनों बाद जापान और रूस में भी सन्धि हो गई जिससे उन्होंने चीन की स्वतन्त्रता तथा पिछली सन्धि के समय की चीन साम्राज्य की सीमा, वहाँ खुले दरवाजे की नीति को स्वीकार किया। ३१ अगस्त १९०७ को ग्रेट ब्रिटेन और चीन में सन्धि हो गई जिसके अनुसार उन्होंने तिब्बत पर चीन का आधिपत्य स्वीकार किया।

मंचूरिया में जापान के प्रभाव के बढ़ने के साथ साथ वहाँ जापानियों का व्यापार भी बढ़ा। ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि जापान का देश मंचूरिया के इतने निकट है। धीरे धीरे जापान ने इससे अनुचित लाभ उठाना आरम्भ किया और 'खुले द्वार' की नीति के सिद्धान्तों का भी उल्लंघन किया। इसके अतिरिक्त जापान ने चीन से कुछ समझौते किये जिससे उसके रेलवे के अधिकार बढ़ गए और उसने कई नई रेलवे-लाइनें बनाईं जो मंचूरिया के अन्तस्थ से आती थीं और मुख्य रेलवे-लाइन में मिल जाती थीं। इससे जापान को मंचूरिया के अन्दर घुसने और नये नये सुधार करने का अच्छा अवसर मिला।

जापान ने चीन से कुछ ऐसे समझौते किये जिनसे उसकी मंचूरिया में आर्थिक दशा अच्छी हो गई। १९१० में उसे 'फ़ुशुन', और 'यनटाई' की कोयले की खदानें मिल गईं। ओकूरा एण्ड कम्पनी को 'पेन्हसिह' की खदानों का ठेका मिल गया। उसे मंचूरिया में लकड़ी काटने के भी अधिकार मिले, चुंगी की दर में भी कुछ रियासतें दी गईं।

इन सब समझौतों से बड़ी जटिल समस्याएँ उठ-खड़ी हुईं। चीन और जापान में रेल सम्बन्धी झगड़े होने लगे। 'खुले द्वार' के सिद्धान्त के उल्लंघन से जापान का अन्य राष्ट्रों से भी मतभेद रहने लगा। इस पारस्परिक मतभेद को शान्त करने के लिये यह कहा गया कि चीन अमेरिका, ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस इत्यादि से धन लेकर मंचूरिया की जापानी और रूसी रेलें ख़रीद लें, परन्तु जापान इससे सहमत हुआ।

चीन में प्रजातन्त्र राज्य

योरुप में इस समय एक महान् युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। साथ साथ चीन में भी एक महान् क्रान्ति की आग सुलग रही थी 'मुक्कामार' विद्रोह के बाद चीन की महारानी ने साम्राज्य में सुधार करना आरम्भ किये। अनेकानेक आज्ञापत्र शिक्षा, फ़ौज, शासन प्रणाली के सुधार के लिये प्रकाशित हुए। 'युवान् शिहकाई' ने फ़ौज का नया संगठन किया, जरमनी से शिक्षक बुलाए जिन्होंने उन्हें योरुप के नवीन अस्त्र, शस्त्र चलाना सिखाया। कुछ लोग विदेशों को वहाँ की शासन पद्धतियों के अवलोकनार्थ भेजे गए परन्तु इसी समय महारानी की मृत्यु हो गई और नए शासक के अन्तर्गत सुधारों का वह जोर जाता रहा। १९०९ ई० में प्रान्तिक सभाओं की बैठक हुई और १९१० ई० में पीकिंग में एक बृहत् राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें सदस्यों ने माँग रक्खी कि नवीन शासन पद्धति की घोषणा शीघ्र की जाय। इतना होने पर भी चीन में अशान्ति की ज्वाला धधकती रही। चीन सरकार ने इसे शान्त करने के लिए इंगलिस्तान के समान शासन पद्धति स्थापित करने की घोषणा की, परन्तु क्रान्तिकारी न माने और २५ दिसम्बर १९११ ई० में उन्होंने चीन में प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की। डाक्टर 'सनयात् सेन' चीन प्रजातन्त्र राज्य के सर्वप्रथम् सभापति निर्वाचित हुए।

चीन की इस क्रान्ति से जापान बहुत असन्तुष्ट हुआ और १८ दिसम्बर को वहाँ के मंत्री 'इत्रुइन' ने चीन की नवीन शासन पद्धति को अस्वीकार किया, परन्तु इससे अधिक वह कुछ न कर सका क्योंकि इंगलिस्तान ने उसके साथ सहयोग करने में आना-कानी की।

योरुप का महासमर १९१४-१८

५ अगस्त १९१४ ई० को ग्रेटब्रिटेन ने जरमनी के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा कर दी। इसके दो दिन पश्चात् टोकियो में इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ

और यह निर्णय हुआ कि जापान युद्ध में भाग ले। उसको आशा थी कि वह जरमनी की सामुद्रिक शक्ति को पूरब से सदा के लिए उखाड़ सकेगा। १८ अगस्त को जापान ने एक 'अल्टीमेटम' जरमनी भेजा जिसमें उसको कहा गया कि (१) वह जापान और चीन के किनारे स्थित समुद्रों और खाड़ियों में से अपने सैनिक-जहाज़ वापस बुला लेवे। (२) जरमनी अपनी किआचाओं की सब ज़मीन जापान को दे देवे, जिससे जापान उसे चीन को लौटा दे।

जरमनी ने इसका कुछ उत्तर न दिया। अवधि के बाद जापान ने चीन में जरमनी के स्थानों पर मार काट मचा दी जिससे चीन और जापान में भी मत-भेद होने लगा क्योंकि जापान बिना चीन देश की ज़मीन का उपयोग किये जरमनी के स्थानों पर आक्रमण नहीं कर सकता था। दूसरे कुछ रेलें ऐसी थीं जो चीन और जरमनी दोनों की थीं। चीन ने झगड़ा सुलझाने के लिए कुछ स्थान युद्ध के लिए दे दिये।

जब जापान ने शाण्टङ्ग में जरमन स्थान ले लिये तब चीन ने उन्हें जापान से तुरन्त वापस माँगा। जापान ऐसा करना नहीं चाहता था जब तक कि योरुप में सन्धि न हो जाय। इसके अतिरिक्त उनमें सन् १९०९ ई० से १९१४ ई० तक रेल-सम्बन्धी अनेकानेक झगड़े आ खड़े हुए।

इक्कीस माँगें (१९१५)

७ नवम्बर को जब जापान ने 'किउचाउ' जीत लिया तब चीन ने उसे भी वापस माँगा। जापान इसे भी नहीं देना चाहता था। उसने चीन के साथ समझौते की बातचीत आरम्भ की और उसके सम्मुख अपनी २१ माँगें रक्खी, जिन्हें हम स्थानाभाव से यहाँ नहीं दे सकते। हाँ, इतना कह देना उचित समझते हैं कि यदि चीन सरकार इन माँगों को स्वीकार कर लेती तो उसका साम्राज्य एक जापानी उपनिवेश हो जाता। 'युवान शिह काई' ने कुछ उत्तर न दिया। जापान ने चीन को ४७ घण्टे का अल्टीमेटम् दिया और चीन को निम्नलिखित शर्तें मानने पर विवश किया। (१) जापान को शाण्टङ्ग में जरमनी के सब अधिकार दे दिये जाँय। (२) यदि चीन 'शेफू से सिनान्-किउचाउ' तक रेल बनावे तो जापान उसमें अपना धन लगा सकता है। (३) विदेशियों के रहने और व्यापार करने के लिए शाण्टङ्ग के बड़े बड़े शहर खोल दिये जाँय।

इसके साथ चीन-जापान में एक दूसरी सन्धि हुई जिसके अनुसार पोर्ट आर्थर, डेरिन और दक्षिण मंचूरिया की रेलों का पट्टा २५ वर्ष से ९९ वर्ष तक के लिये बढ़ा दिया गया। (२) वहाँ जापानी लोग व्यापार, व्यवसाय या खेती के लिए ज़मीन लगान पर ले सकते थे। (३) दक्षिणी मंचूरिया में जापानी लोग रह सकते थे और व्यापार कर सकते थे। (४) मंचूरिया में जापानियों को 'एक्सट्रा टेरिटोरियलिटी' के अधिकार दिये गए। इसी प्रकार की अन्य रिआयतें जापानियों को मिलीं।

जब इन समझौतों की खबर अन्य राष्ट्रों को मिली तो उन्होंने अपना असन्तोष प्रकट किया। अमेरिका ने इसका घोर विरोध किया। जापान ने अमेरिका को सन्तुष्ट करने के लिये २ नवम्बर १९१७ को उससे समझौता कर लिया जिसके अनुसार अमेरिका ने स्वीकार किया कि चीन के निकट होने के कारण जापान के उस देश में विशेष अधिकार हैं तथा जापान सरकार ने अमेरिका की सरकार को आश्वासन दिया कि यद्यपि चीन में उसके विशेष अधिकार हैं फिर भी व्यापारिक मामलों में किसी राष्ट्र के साथ भेदभाव न होगा।

योरुप में महासमर के पश्चात् १९१८ ई० में वारसाई की सन्धि हुई। जापान ने वहाँ राष्ट्रों के सामने, जिनमें चीन भी था, अपनी यह माँग रक्खी कि उसको 'किउचाउ' तथा शैण्टङ्ग के सूबों में जर्मनी के रेल सम्बन्धी सब अधिकार मिल जाँय। बहुत दिनों के वाद-विवाद के बाद जापान की माँगें पूरी हुईं।

वाशिङ्गटन कान्फ़रेंस (१९२१)

महासमर का सब से बड़ा परिणाम था राष्ट्रों में निःशस्त्रीकरण की भावना का जागृत होना। इस प्रश्न के साथ शान्त महासागर के देशों की समस्याओं पर भी विचार होना था। इसके लिये १९२१ ई० में अमेरिका में वाशिङ्गटन कान्फ़रेंस की आयो-

जना हुई। चीन, बेल्जियम, हालैण्ड और पुर्तगाल भी आमन्त्रित किये गये।

चीन ने वाशिङ्गटन में उपस्थित राष्ट्रों के सामने अपनी सब समस्याओं को रक्खा। उसने चीन से विदेशियों के विशेष अधिकार, जापान की १९१५ की सन्धि, चीन में अन्य राष्ट्रों के लगानी स्थान, मंचूरिया में जापानी गार्डों का होना, अन्यायपूर्ण बतलाया। जापान के सदस्यों ने भी अपने उत्तर और प्रत्युत्तर दिये।

१६ नवम्बर को कान्फरेंस ने चीन-जापान के विषय में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये :—

(१) चीन की स्वतन्त्रता, आधिपत्य, तथा राज्य की सीमा पूर्ववत् रहें और सब इसे स्वीकार करें।
(२) कोई देश चीन की उन्नति के मार्ग में बाधक न हो।
(३) चीन में सब को व्यापार करने के समान सुभीते रहें।
(४) कोई राष्ट्र चीन की अशान्तिमय आन्तरिक परिस्थिति से लाभ न उठावे।

इसी प्रकार 'खुले द्वार' की नीति के विषय पर भी प्रस्ताव पास हुए। चीन को चुंगी के कर लगाने में कुछ स्वतन्त्रता दी गई। शैण्टङ्ग का प्रश्न 'कान्फरेंस' के सामने नहीं आया वरन् एक पृथक सन्धि द्वारा तय कर दिया जिसके अनुसार 'किउचाउ' चीन को वापस मिल गया, परन्तु वहाँ के स्कूल, धार्मिक स्थान तथा क़बरिस्तान जापानियों के ही अधिकार में रहे। चीन को सिनान-सिंगटाओ रेलवे तथा उसकी सहयोगी रेलें भी वापस मिलीं।

जापान की ओर से बैरन शिडेहरा ने चीन को आश्वासन दिया कि जापान 'एक इंच भी चीन का राज्य' नहीं चाहता वरन् वहाँ 'खुले द्वार' की नीति तथा समान व्यापारिक और व्यवसायिक सुभीते चाहता है।

चीन में इस समय घरेलू लड़ाइयाँ हो रही थीं। जून १९२८ ई० में 'नैशनलिस्ट्स' का बोलबाला हुआ परन्तु पारस्परिक विरोध कम न हुए। इसका प्रभाव चीन की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर बुरा हुआ। जापान में इस समय 'बैरन टनाका' प्रधान मन्त्री था। उसकी नीति थी कि एशिया की विजय करने के लिये जापान को पहले चीन की विजय करनी चाहिये, और चीन की विजय करने के लिये जापान को मंचूरिया की विजय करनी उचित है'। उसकी इस नीति को इतिहास में 'महाद्वीप की नीति' (Continental Policy) कहते हैं। १९२७ ई० और पुनः १९२८ ई० में जनरल चाँग काई शेक ने दो बार पीकिंग पर विजय पाने के लिये 'शैन्टंग' पर आक्रमण किया। बैरन टनाका ने वहाँ के जापानियों के रक्षार्थ एक सेना भेजी। मई १९२८ ई० में सिनान के स्थान पर चीन और जापानी फ़ौजों में लड़ाई हो गई जिसमें बहुत से प्राण गये। जापान ने सिनान-सिंगटाओ रेल के दोनों ओर ७ मील चौड़ी ज़मीन ले ली और चीनी फ़ौज को उसमें से निकाल दिया। चीन सरकार ने इसका विरोध किया परन्तु बैरन टनाका ने इसका कारण जापानियों के प्राणों की रक्षा करना बतलाया। चीन सरकार ने जेनेवा के राष्ट्रीय संघ से अपील की परन्तु इसका कुछ फल न हुआ। तब चीनियों ने 'बायकाट' का अस्त्र उठाया और जापानी माल के बहिष्कार का आन्दोलन आरम्भ किया जिससे बैरन टनाका को विवश होकर सन्धि करनी पड़ी और जापान को उक्त स्थान से अपनी फ़ौज वापस करनी पड़ी।

चीन में जापानियों के विरोध का आन्दोलन चल रहा था। चीन सरकार ने प्रकाशित किया कि पहली जनवरी १९३२ ई० से 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियलिटी' के अधिकार तोड़ दिये जायँगे जिसका अन्य राष्ट्रों ने (जिनमें जापान भी था) विरोध किया।

इसी समय मंचूरिया में चीन-जापान का पारस्परिक वैमनस्य बढ़ रहा था। चीन ने वाशिंगटन कान्फरेंस में १९१५ की सन्धि के रद्द कर देने की माँग रक्खी थी परन्तु इस प्रश्न पर वहाँ विचार न हो सका। इस सन्धि के अनुसार चीन ने क्वांगटन का पट्टा २५ वर्ष से ९९ कर दिया था। अब चीन सरकार ने जापान सरकार को लिखा कि वह सन्धि रद्द कर दी जाय जिसका जापान ने निषेध किया।

मंचूरिया के रेलों के विषय में अनेकानेक झगड़े उठे जिनसे परेशान होकर चीन ने निश्चय किया कि मंचूरिया की रेलों में जापान के साथ साझा न किया

जाय और वहाँ सब नई रेलें चीनियों के धन से और चीनियों के द्वारा बनवाई जाँय। इस अनुष्ठान के अनुसार १९२५-३१ तक दक्षिणी मंचूरिया में ५०० मील तक रेलें बनीं।

इसके अतिरिक्त मंचूरिया में चीनियों के बड़े कारखाने, इमारतें थीं, अगणित जापानी वहाँ रहते थे। १९२७ तक जापान की नीति रही कि मंचूरिया के अन्दरूनी मामलों में जापान हस्तक्षेप न करे, परन्तु सन् १९२७ ई० में बैरन टनाका ने चीन सरकार को लिखा कि मंचूरिया में अधिकतर अशान्ति तथा अराजकता रहती है। इससे जापान सरकार बाध्य होगी कि वहाँ शान्ति स्थापित करने के लिये प्रयत्न करे।

३ जून १९२८ ई० को पीकिंग सरकार का 'ताना-शाह' चैंगतसोलिन जब मुकडेन जा रहा था उसकी गाड़ी मार्ग में बम से उड़ा दी गई और उसकी मृत्यु हो गई। बाद में पता चला कि जिस पुल पर यह घटना हुई थी वह जापानी रक्षकों की देख-भाल में रहता था।

इससे चीन-जापान की तनातनी बहुत बढ़ गई। १९२८ ई० को मार्शल चैंग सुह-चियाँग ने अपने पिता का स्थान लिया। उसके अन्तर्गत मंचूरिया की अशान्ति बढ़ी। मंचूरिया के बड़े बड़े नगरों में जापान-विरोधी भिन्न भिन्न संस्थाएँ बनीं जैसे 'फ़ारेन अफ़ेयर्स असोसियेशन', 'नार्थ ईस्टर्न कल्चरल असोसियेशन'।

१८ सितम्बर की रात को चीन की एक फ़ौज में और जापान के रेल-गार्डों में संघर्ष हो गया। घटना एक साधारण थी परन्तु जापान ने इससे अनुचित लाभ उठाया। इसके दूसरे ही दिन जापान ने मुकडेन और 'चंगचुन' पर अधिकार कर लिया और उसके दूसरे दिन 'पिंगकाऊ', 'चिंगटू', 'फूशुन' इत्यादि मंचूरिया के प्रधान स्थान जापानियों के हाथ में आ गये। चीनियों की पराजय हुई और दूसरी जनवरी १९३२ ई० तक समस्त मंचूरिया में जापान का अधिकार हो गया।

चीन ने जेनेवा के राष्ट्र-संघ के पास फिर अपील की। बड़ा वाद-विवाद हुआ और अन्त में एक कमीशन वहाँ की जाँच करने के लिये नियुक्त हुआ जिसका सभापतित्व इंगलैण्ड के लार्ड लिटन को दिया गया।

इसी समय शांघाई में युद्धाग्नि धधकने लगी। इसका कारण यह था चीन में जापानी माल के बहिष्कार का आन्दोलन बड़े वेग से चल रहा था। शांघाई चीन का सब से बड़ा बन्दर था। वहाँ संसार के सब राष्ट्रों के व्यापारी रहते थे जिनमें जापानियों की संख्या सब से अधिक थी। चीन के 'बायकाट' आन्दोलन से जापान को भारी हानि हुई।

शांघाई के बीचोबीच में दो मुख्य स्थान हैं—(१) अन्तर्राष्ट्रीय सेटिलमेन्ट, (२) 'फ्रांसीसी कन्सेशन'। इनमें अधिकतर विदेशी रहते हैं जो इसमें ज़मीन लगान पर ले सकते हैं। उनको 'एक्स्ट्राटेरिटोयलिटी' के अधिकार हैं। चीन में अराजकता तथा पारस्परिक झगड़ों के समय यह प्रथा रही कि इनसे छेड़छाड़ न की जाय।

इस समय चीनियों में पारस्परिक लड़ाई नहीं हो रही थी वरन् उनकी और जापानियों की टक्कर थी जो एक विदेशी राष्ट्र था और जहाँ के निवासी इन स्थानों में रहते थे। अतः स्वाभाविक था कि यह प्रश्न उठता कि 'अन्तर्राष्ट्रीय सेटिलमेन्ट तथा फ्रेञ्च कन्सेशन' की ओर कैसा व्यवहार किया जाय। चीनियों का कहना था कि जापानी इन स्थानों में अपने भाइयों की रक्षा नहीं करना चाहते, वरन् कोरिया और मंचूरिया के समान यहाँ रह कर और शांघाई पर आक्रमण करके चीन का गला घोंटना चाहते हैं।

१८ जनवरी १९३२ ई० को एक दुर्घटना हो गई। चापी (शांघाई) में एक चीनी कारखाने के सामने चीनी-जापानी मुठभेड़ हो गई जिसमें दो जापानी घायल हुए और उनमें एक की मृत्यु हो गई। इसके दो दिन बाद जापानियों ने उस कारखाने में आग लगा दी जिसमें उनका म्युनिसिपल पुलिस से मुकाबला हुआ और तीन चीनी और तीन जापानी घायल हुए।

जापानी कान्सल जेनरल ने शांघाई के मेयर के सामने निम्नलिखित माँगें रक्खीं :—

(१) मेयर क्षमा प्रार्थना करे।

(२) १८ जनवरी के अपराधियों को दण्ड मिले।

(३) जापान-विरोधी आन्दोलनों का अन्त किया जाय।

शांघाई के मेयर ने चीन के नेताओं से अनुनय विनय किया कि वे जापान के माल का बहिष्कार कराने वाली संस्थाएँ तोड़ दें और २७-२८ जनवरी की रात में पुलिस ने कुछ दफ़्तरों पर अपना अधिकार कर लिया। २८ जनवरी के प्रातःकाल एडमिरल शिरज़ोवा ने कहा कि यदि मेयर का कोई उत्तर न आयेगा तो जापान कल प्रातःकाल अपना काम आरम्भ करेगा।

इन जापानी धमकियों ने चीनियों को बहुत क्रुद्ध कर दिया। ऐसी दशा देख कर अन्तर्राष्ट्रीय सेटिलमेन्ट के लोग सजग हो गये और हर एक राष्ट्र ने अपनी अपनी सेनाओं के स्थान नियत कर दिये। जापानियों का स्थान सेटिलमेन्ट के उत्तर-पूर्वी भाग में था परन्तु जापानी लोग सेटिलमेन्ट के कुछ बाहर तक निकल कर चापी के पास पहुँच गये जहाँ चीनी फ़ौज पड़ी थी। यदि जापानी अब और आगे बढ़ते तो यह आवश्यक था कि चीनी सेना के साथ उनकी टक्कर हो जाती।

उसी दिन दोपहर में शांघाई के मेयर ने जापानियों की माँगें स्वीकार कर लीं और जापानियों ने उस पर सन्तोष की भावना प्रगट की। परन्तु उसी रात के ११ बजे एडमिरल 'शिरज़ोवा' ने मेयर के पास अपनी यह घोषणा भेजी कि 'चापी' में जापानियों की रक्षा करने के लिये एक जापानी सेना भेजना निश्चित हुआ है और चीनी अपनी चापी में ठहरी हुई सेना को रेल के पश्चिम ओर हटा ले जाँय। यह सन्देशा शांघाई के मेयर के पास ११-१५ बजे पहुँचा और ११-४५ पर ही जापानी सेनाएँ चापी की ओर बढ़ीं और उनकी और चीनी सेना की मुठभेड़ हो गई। जापानी सेना पर बम बरसने लगे और प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे चापी में ७५ से १०० फ़ीट ऊँची लपटें उठ रही थीं। साथ ही नानकिंग पर भी बमवर्षा होने लगी।

चीन ने जेनेवा के संघ से फिर अपील की। संघ ने भिन्न राष्ट्रों के उन्नीस सदस्यों की एक समिति नियुक्त की और अन्त में उस समिति ने यह तय किया कि चीन में लड़ाई रोक दी जाय। चीनी फ़ौजें वहीं की वहीं पड़ी रहें और जापानी फ़ौजें उसी स्थान को लौट जायँ जहाँ वे इस लड़ाई के पहले थीं। इस प्रकार वहाँ एक संरक्षित भाग बना दिया गया।

हम ऊपर कह चुके हैं मंचूरिया में चीन और जापान का संघर्ष हुआ जिसमें चीनियों की हार हुई। बैरन टनाका की नीति के अनुसार जापान को चीन में पदार्पण करने के लिये आवश्यक था कि वह मन्चूरिया पर अधिकार जमाये। इस ध्येय की पूर्त्ति के लिये जापान ने एक नई चाल सोची। उसने मन्चूरिया में चीन-विरोधी भावना का निरूपण किया। मन्चूरिया के निवासियों के सामने मन्चू सम्राटों के पतन का दृश्य खींचा। और 'मन्चूरिया मन्चूरियनों के लिये है' (Manchuria for the Manchurian's) तथा 'सीमा के अन्दर शान्ति रहे' निवासी सकुशल रहें (Peace within borders and Security for the inhabitants) के नारे लगवाए। तत्पश्चात् अक्तूबर १९३१ में जापानियों ने चुपके चुपके मुकडेन में सेल्फ़ गवर्नमेण्ट गाइडेन्स नामक संस्था बनाई और भिन्न भिन्न नगरों में नाम मात्र के लिए म्यूनिसिपल गवर्नमेण्ट की स्थापना की और भिन्न भिन्न प्रान्तों में भी नाम के लिए प्रान्तीय सरकारें स्थापित की। फिर १६-१७ फ़रवरी १९३२ ई० को मुकडेन में प्रान्तीय सरकारों की एक सभा हुई जिसमें सात गवर्नर उपस्थित थे। इस सभा ने मन्चूरिया में नए शासन विधान की स्थापना का निश्चय किया जिसके मौलिक सिद्धान्तों के निर्माण करने के लिए एक समिति बनाई गई। १८ फ़रवरी को मन्चूरिया की स्वतन्त्रता की घोषणा की गई। २५ फ़रवरी को मंचुको (या मन्चूरिया के राज्य) की स्थापना हुई। 'सिंगकिंग' इसकी राजधानी हुई। पहली मार्च को मन्चुको ने अपना चीन से नाता तोड़ दिया। चीन की गद्दी से उतारा मन्चू सम्राट 'ची' मन्चुको का शासक और 'चियांग हसिआओ हसी' प्रधान मन्त्री बना। जापान ने मन्चुको की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और वहाँ अपना प्रतिनिध भेज दिया।

मंचुको का गोरखधंधा

इसी समय लिटन कमीशन ने निष्पक्ष भाव से जाँच आरम्भ की। उसकी रिपोर्ट ने जापान के ढोल

की पोल खोल दी। उस रिपोर्ट में जापान पर दो मुख्य लाञ्छन थे। (१) १८ दिसम्बर को जापान ने जो आक्रमण किया वह आत्मरक्षा का साधन नहीं कहा जा सकता (२) मन्चूरिया में स्वाधीनता की स्थापना जापानी सेना तथा जापानी कर्मचारियों की उपस्थिति से ही सम्भव हो सकी और वहाँ की प्रजा की वास्तविक तथा हार्दिक स्वधीनता की भावना उसका कारण न थी।

जापान ने लिटन रिपोर्ट का घोर विरोध किया, परन्तु जेनेवा राष्ट्रसङ्घ ने बड़े तर्क वितर्क के बाद एकमत से उसे स्वीकार किया और मन्चूरिया की स्वाधीनता को अस्वीकार करते हुए तय किया कि मन्चूरिया चीन राज्य के अन्तर्गत रहे। जापान ने इससे असन्तुष्ट होकर लीग से अपना नाता बिल्कुल तोड़ दिया।

मंचुको की स्थापना के उपरान्त जापान ने जेहोल प्रान्त पर दाँत लगाया। पहली जनवरी १९३३ ई० से 'शंहैंकुआन' में युद्ध आरम्भ हुआ और जापान और मंचुकों की सेनाओं ने मिल कर उस पर अधिकार कर लिया। समस्त जेहोल प्रान्त में चीन और जापान मंचुको की संयुक्त सेनाओं में युद्ध होने लगा। ४ मार्च १९३३ को बिना एक गोली चलाए जेहोल की राजधानी 'चेंगटह्' जापानियों के हाथ आ गई। चीनी जेहोल में न ठहर सके और 'ग्रेट वाल' के दक्षिण भाग गए। जापानियों ने 'ग्रेट वाल' के दक्षिण पर भी धावा मारा। ३१ मई, १९३३ ई० को जापान-चीन में टाँगू का समझौता हुआ जिसके अनुसार 'ग्रेट वाल' से लेकर लुटाई, टुङ्चांग, येनचिंग तक का स्थान संरक्षित Demilitarized Zone कर दिया गया जिसमें कोई सेना नहीं रह सकती थी। चीनी सेनाएँ इसके दक्षिण चली आईं और इस स्थान में शान्ति स्थापित करने के लिए चीनी पुलिस नियत हुई।

इस प्रकार चीन के हाथ से मञ्चूरिया और जेहोल निकल गया। तब से जापान यह प्रयत्न कर रहा है कि संसार के सब राष्ट्र मंचुको की स्वतन्त्रता स्वीकार करें, दूसरी ओर जेनेवा का राष्ट्र संघ इसका निषेध करने में उतना ही तुला है। ७ जून १९३३ ई० को उसकी एक 'उप-समिति' ने सब राष्ट्रों को अपना एक वक्तव्य भेजा है जिसमें उनसे विनय किया है कि मंचुको को रेडियो, तार, डाक, इत्यादि के अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में स्थान न दिया जाय, उसके सिक्के पासपोर्ट, डाक के टिकट, स्वीकार न किये जाँय।

आधुनिक परिस्थिति (३)

जापान की यह नाट्य लीला और मंचुको और जेहोल की घटनाओं से समाप्त न हुई। पिछले दो-तीन वर्षों से वह मंगोलिया में स्वतन्त्रता-आन्दोलन का सञ्चालन कर रहा है। इसमें उसके दो अभिप्राय हैं—(१) कुछ पिछले वर्षों से चीन की शासन व्यवस्थाओं से सँभल जाने से चीन की केन्द्रीय सरकार बलशाली होने लगी तथा चीन साम्राज्य के उत्तर पश्चिमी भाग में उन्नति होने लगी। इससे जापानी सेना के नेताओं को खटका हुआ। यदि चीन की केन्द्रीय सरकार अपनी उत्तर पश्चिमी सीमा पर बलवान सेना नियुक्त कर उसे सुरक्षित कर लेगी तो जापान की पश्चिमी चीन में सभी योजनाओं पर पाला ही न पड़ जायगा वरन् मञ्चुको की स्वतन्त्रता में भी बाधा पड़ेगी। (२) जापान-जरमनी और जापान-इटली में समझौता हो जाने से संसार के तीन 'तानाशाही' देश एक ही खीमे में आ गए। जापान को इससे साम्यवाद को दबाने के बहाने चीन में हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया जिससे वह मंगोलिया और उसके बाद रूस के राज्य पर धावा मार सके।

जापानियों ने अपने इन अभिप्रायों को सिद्ध करने के लिये चीनियों को चीनियों से भिड़ाया और पूर्वी मङ्गोलिया को पश्चिमी मङ्गोलिया पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन दिया इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जापान की सुइयान तथा अन्दरूनी मङ्गोलिया के उत्तर पश्चिमी भाग को पराजित करने की इच्छा कोई नई बात नहीं है वरन् उसकी 'महाद्वीप नीति' Conti-

nental Policy का ही फल है। जापान की इस इच्छा के कुछ आर्थिक तथा सैनिक पक्ष भी हैं जिन पर हम अब विचार करेंगे। (१) जापान चीन की उत्तर-पश्चिम की संरक्षक सीमा को तोड़ देना चाहता है। यह सीमा उसके उत्तर पश्चिम में मङ्गोलियन प्लेट पर है जो पूर्व दिशा में किङ्गन पहाड़ से आरम्भ होती है और पश्चिम में पामीर तक जाती है। पश्चिमी सीमा लगभग १००० मील लम्बी है जिसमें वाह्य मङ्गोलिया का कुछ भाग है तथा सिंगक्यांग, कांसू, निंगसिया, सुइयान और चहार हैं। १९२४ ई० में जब वाह्य मङ्गोलिया स्वतन्त्र हो गया तो चीन की सीमा गोवी के मरुस्थल के दक्षिण में आ गई। १९३१ में मञ्चूरिया, जेहोल, पूर्वी होपी, उत्तरी चहार निकल जाने से चीन की सीमा सिकुड़ कर 'ग्रेटवाल (चीन की बड़ी दीवार) के अन्दर आ गई।

सुइयान जेहोल और चहरयार के पूर्व में स्थित है। इसके उत्तर में वाह्य मङ्गोलिया है, पूर्व में चहार पश्चिम में निंगसिया, कॉसू और दक्षिण में शांसी और शेंसी हैं। इस प्रकार सुइयान, उत्तर चीन और उत्तर पश्चिम चीन के बीच एक द्वार ही नहीं है वरन इन भागों में आने जाने वाले मार्गों का केन्द्र है। यहाँ से एक रास्ता 'उर्गा' हो कर साइबीरिया जाता है, दूसरा पूर्व को ओर उत्तरी चहार होकर जेहोल जाता है, तीसरा पश्चिम की ओर निंगसिया और 'कांसू' होकर सिंगक्याँग जाता है। पाँचवाँ दक्षिण पश्चिम की ओर शांसी और होपी को जाता है। स्वाभाविकत: यदि चीन के हाथ से सुइयान निकल जाय तो चीन की रक्षा की समस्त उत्तरी-पश्चिमी संरक्षक सीमा उसके हाथ से निकल जायगी। उत्तरी चीन के लिए सुइयान एक रोक है। यदि जापान उसे ले ले तो दक्षिण में शांसी और शेंसी पर और पूर्व में 'होपो' और 'चहार' पर आसानी से आक्रमण कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त सुइयान के निकल जाने से उत्तरी चीन और उत्तर-पश्चिमी चीन के सूबे पृथक पृथक हो जाँयगे जिससे उनके बीच का एक जोड़ निकल जायगा और वे खटके में पड़ जाँयगे। इससे उत्तरी चीन ही चीन साम्राज्य से न निकल जायगा, वरन् निंगसिया और कांसू भी जापानियों के आक्र-के लिए खुल जाँयगे। इसी कारण जापानियों ने मञ्चुको और मङ्गोलिया की सेनाओं को 'सियान' पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन दिया।

(२) जापान चीन का सम्बन्ध बाहरी संसार से तोड़ देना चाहता है। चीन के सामुद्रिक किनारों पर अच्छे अच्छे बन्दर हैं जिनमें बड़े बड़े जहाज़ आते जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक स्थल मार्ग भी है जो सिक्याँग, मङ्गोलिया, साइबीरिया होकर यूरप जाता है। चीन-जापान में युद्ध छिड़ जाने पर जापान चीन का सामुद्रिक मार्ग तो सरलता से बन्द कर सकता है क्योंकि चीन के किनारे किनारे टापुओं की एक 'लाइन' स्थित है जो जापानियों के अधिकार में हैं। जापानी जहाज़ चीन के समुद्रवर्ती प्रान्तों पर आसानी से बम चला सकते हैं और अपने अधिकार में ले सकते हैं। कोरिया में अधिकार होने के कारण 'पीलासागर' और चिहली की खाड़ी, लिउ चिउ टापुओं में अधिकार होने के कारण 'पूर्वी सागर' और फार्मोसा पर अधिकार होने के कारण 'चीन सागर' उसके चंगुल में हैं। इस कारण युद्ध के समय जापान समुद्र मार्ग से चीन में खाद्य पदार्थों का जाना सरलता से रोक सकता है। परन्तु स्थल मार्ग का रोकना उसके बस में नहीं। वाह्य मङ्गोलिया के स्वतन्त्र हो जाने, 'उत्तरी चहार' और 'डोलोना' के जापानियों के अधिकार में चले जाने से स्थल मार्ग से आना जाना बहुत कुछ बन्द हो गया फिर भी उत्तर-पश्चिम के मार्ग का उपयोग हो सकता है और अब भी सिंक्यांग और योरुप से आना-जाना बना है जिससे जापान बड़ा चिन्तित है। चीन को पराजित करने के पूर्व जापान के लिये परमावश्यक है कि वह चीन और महाद्वीप का सम्बन्ध तोड़ दे। वास्तव में चीन के इस समय तक स्वतन्त्र रहने का कारण बस एक ही है—चीन में उपस्थित राष्ट्रों की शक्ति की समता (International balance of power)। चीन का सब से बड़ा सहायक रूस है जो उसकी उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित है। अतः यह आव-श्यकता हुई कि वाह्य मङ्गोलिया और रूस का भी घेरा किया जाय। इसी कारण मंचुको की स्थापना के समय से जापान साम्यवाद के दमन करने में लगा

है, तथा मंचुको की सेना रूसी सीमा पर उपद्रव मचा रही है।

(३) जापान की इस कूद-फाँद का एक आर्थिक पक्ष भी है। जापान में प्राकृतिक पदार्थों की कमी है। उसे कच्चा माल लेने के लिये अन्य देशों की ओर हाथ बढ़ाना होता है। उसे भय है कि संसार के अन्य देश किसी समय भी उसे कच्चा माल देना बन्द कर दें तो वह बड़े संकट में पड़ जायगा। जापान में मुख्यतः सूती, ऊनी कपड़ों और साधारण दैनिक प्रयोग के सामान के कारखाने हैं। पिछले वर्षों में जापान से ऊनी सामान भी बड़े परिमाण में बाहर भेजा जा रहा है। इस विषय में १९३४ ई० की अन्तर्राष्ट्रीय ऊन कांग्रेस के एक सदस्य ने कहा था कि जो जापान कि गत वर्षों में यूरोप से ऊनी सामान मँगाता था, आज वह उसे बना कर बाहर के देशों को भेजता है। यूरोप को बाजारों में इंगलिस्तान, जर्मनी और फ्रांस पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा है।

अभी तक जापान आस्ट्रेलिया से ही कच्चा ऊन मँगाता था। उत्तर-पश्चिमी चीन और अन्तस्थ मंगोलिया में भी भेड़ें पाली जाती हैं और अच्छा ऊन बनाया जाता है। विस्तार में यह स्थान आस्ट्रेलिया के इतना है और एक 'प्लेटू' पर स्थित है जहाँ की जलवायु शुष्क है और जहाँ के चरागाहों में बड़ी संख्या में भेड़ें पल सकती हैं, इसी कारण अन्तस्थ मंगोलिया में जेहोल, चहार, सुइयान, और उत्तर-पश्चिमी चीन में 'काँसू', निंगसिया, चिङ्घाई अपने ऊन के लिये चीन में प्रसिद्ध हैं। इन छः प्रान्तों में निम्न-लिखित स्थान ऊन के लिये विख्यात हैं :—

चिङ्घाई—ह्वाँगयुआन, ततुङ्ग, युङ्गान, सिनिंग, टिंगटू, लब्राँगा।

निङ्गसिआ—निङ्गसिआ, तेङ्गकू, लिङ्गवू, चुँगवी, वीयुआन।

कान्सू—लन्चाऊ, लिआँगचाऊ, पिंगलिआँग, ताओचाओ, तुनहुआँग, सिआहो, मिन्चाओ।

सुइयान—वूयूआन, पाओताओ, कीसुई, ताओ-लिन, वूहुआफू।

चहार—चंगपेह, सुआनह्वा, चोलू, दोलोनर।

जेहोल—चिफेङ्ग, चाओपङ्ग, सुइटङ्ग, चङ्गटेह।

चीन सरकार की पिछली रिपोर्ट के अनुसार चीन में ५४०,००० पिस्कल ऊन बनाया गया। इसमें चिंगटाई में १६६,००० पिस्कल, कान्सू में ८०,००० पि०, सुइयान और चहार में ६४,००० पि०, निङ्गसिआ में ३०,००० और जेहोल में २७,००० पि० बना।

इस प्रकार अन्तरस्थ मंगोलिया और उत्तर-पश्चिमी चीन में चीन का ७५ प्रतिशत ऊन बनता है। जापान को २० करोड़ येन मूल्य का ऊन प्रति वर्ष बाहर से मँगाना पड़ता है। यदि अन्तस्थ मंगोलिया और उत्तर-पश्चिमी चीन उसे मिल जाय तो उसकी यह समस्या सुलझ जाय। गत वर्ष जापान की सरकार ने अपने दो कर्मचारियों को इस उद्देश्य से अन्तस्थ मंगोलिया और उत्तर-पश्चिम चीन में भेजा कि वे वहाँ जाकर वहाँ ऊन की उत्कृष्टता तथा परिमाण की जाँच करें। इसके अतिरिक्त जापानियों ने किउचाउ एण्ड कम्पनी नामक व्यापारिक संस्था खोली और मंगोलिया ऊलन वीविंग कम्पनी की पूँजी बढ़ाने का उद्योग कर रही है जिससे टेन्टसिन का जापानी कारखाना बढ़ जाय और उसकी उपशाखाएँ देश के अन्दर स्थापित की जाएँ। इस प्रकार जापान ने सुइयान पर आक्रमण केवल राज्य लोभ से प्रेरित होकर ही नहीं किया, वरन् अन्तस्थ मंगोलिया तथा उत्तर-पश्चिम चीन के कच्चे ऊन से प्रलुब्ध होकर भी।

अभी अक्तूबर १९३७ ई० में अमेरिका के सभापति रूजवेल्ट महोदय के भाषण की आलोचना करते हुए जापानी मन्त्रिमण्डल के 'इन्फार्मेशन व्यूरो' के प्रधान 'तत्सुओ कवाई' ने कहा "संसार मनुष्य मात्र का है जिसमें प्रत्येक परिश्रमी व्यक्ति को आनन्द से जीवन व्यतीत करने का अधिकार है। फिर हम देखते कि उसमें सुस्त तथा आलसी लोग आनन्द कर रहे हैं और बेचारे सज्जन तथा परिश्रमी व्यक्तियों के पास जीवन के साधन भी नहीं हैं। इससे अधिक अन्याय पूर्ण और क्या बात हो सकती है। पिछले ५० वर्षों में जापान की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है जिसके लिए कुछ स्थान माँगा, किन्तु उसे सूखा जवाब मिला। जापानियों ने न्याय की आवाज़ उठाई है उन के पास प्राकृतिक पदार्थ कम हैं और वे उन्हें उन अन्य देशों से चाहते हैं जो उन पदार्थों से सम्पन्न हैं। यदि वे देश इस आवाज़ का उचित उत्तर नहीं

देते तो युद्ध के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है" ? जापानी लोग सब यही कहते हैं कि संसार मनुष्य मात्र के लिए है और हम लोग मेहनती और सज्जन हैं अतः हमें भी संसार में आनन्द से रहने का अधिकार होना चाहिये। जापान चाहता है कि महाद्वीप शान्ति के साथ उन्नति करे और चीन के सहयोग की इच्छा करता है। चीन इसका निषेध करता है और यही युद्ध का कारण है।'

दो वर्ष पूर्व एक सम्वाददाता ने 'कामेकिची तकाहशी' नामक जापान के अर्थ शास्त्र विशेषज्ञ से मुलाक़ात की। बातचीत करते हुए तकाहशी महोदय ने कहा, 'आज कल ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका इत्यादि बड़े बड़े देश आर्थिक राष्ट्रीयता (Economic Nationalism) के सिद्धान्तों पर चल रहे हैं। उनके पास बड़ा आर्थिक राज्य है जिससे वे अपने आयोजनों को सफलता पूर्वक विना रोक पूरा कर लेते हैं। जापान का हाल दूसरा है। उसको पास पड़ोस में एक 'आर्थिक राज्य' की खोज करनी पड़ती है।' इस प्रकार विद्वद्वर अपने देश की सेना के अनाचारों को न्याय पूर्ण बता रहे थे कि सम्वाददाता ने प्रश्न किया, यह आर्थिक राष्ट्रीयता का प्रश्न तो कुछ वर्षों से आ प्रस्तुत हुआ है। जापान ने कोरिया और फ़ार्मोसा तो बहुत पहले अपने राज्य में मिला लिये थे। तब तो अंगरेज़ और अमरीका वाले आर्थिक राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों पर नहीं चल रहे थे। उन्होंने उत्तर दिया, जापान आत्मरक्षा के लिये ऐसा करने को वाध्य हुआ इसमें जापान की वही दशा थी जो एक डूबते हुए जहाज़ में उस आदमी की होती है जो बलवान है परन्तु जिसके पास डूबने से बचने के लिए कोई सहारा नहीं है। मान लीजिए, उसी जहाज़ में कुछ कमज़ोर आदमी हैं जिनके पास डूबने से बचने के लिए लकड़ियाँ हैं। यदि अपनी रक्षा करने के लिए यह आदमी कमज़ोर आदमियों से कुछ लकड़ियाँ छीन लेता है तो यह कोई अनुचित बात नहीं। उस समय जापान की ठीक यही दशा थी।

इसके विपरीत चीनियों का कहना है कि यदि जापान को कोई आर्थिक सङ्कट है तो इसका यह अर्थ नहीं कि जापान चीन पर छापा मारे। चीन और जापान की आबादी एक ही प्रकार घनी है। चीन मुख्यतः किसानों का देश है, इस कारण चीन की ज़मीन वहाँ के निवासियों के लिये ही पर्य्याप्त नहीं है। अतः चीन के राज्य को पराजित करने की इच्छा करना जापान के लिए अनुचित है। इसके अतिरिक्त जापान की आर्थिक कठिनाइयों का मुख्य कारण उस देश का छोटा होना या जन संख्या अधिक होना नहीं है वरन् वहाँ के आर्थिक सङ्गठन की त्रुटियाँ हैं। जापान के किसान पशुओं के समान परिश्रम करते हैं, फिर भी भोजन तक के लिए तरसते हैं। साथ साथ वहाँ के शहरों में बड़े बड़े पूंजी पति हैं जिनके पास बड़ा धन है। इसके अतिरिक्त जापान के साम्राज्यवादी नेता चीन को जीत कर एक विश्व युद्ध की ओर अग्रसर होना चाहते हैं। जितना अधिक राज्य उन्हें मिलता है उतना ही अधिक उनका राज्य लोभ बढ़ता है और साथ साथ उन्हें अधिक शस्त्री करण की आवश्यकता भी होती है। ऐसा करने में उन्हें धन की आवश्यकता होती है जिस कारण वे प्रजा पर भांति भांति के कर लगाते हैं जिससे प्रजा को दुःख होता है। जापान के राज्य विस्तार, जन संख्या तथा वहाँ के प्राकृतिक पदार्थ को देख कर विदित होता है कि यदि वे उसका उचित प्रयोग करें तो अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं। चीन तथा संसार के अन्य देश जापान से सहयोग करने को तैयार हैं और एक दूसरे की सहायता करना चाहते हैं जिससे वे साथ साथ फलें फूलें, परन्तु जापान के साम्राज्यवादी इस शान्तिमार्ग से विचलित हो जाते हैं, वे लोगों का धन ले लेना चाहते हैं और उसके स्थान में कहते हैं कि वे जापान की नौकरी करें।'

(पैसिफ़िक डाइजेस्ट से)

इतने दिनों से ठोकर खाते खाते चीनी भी अब कुछ सुधर गये हैं। वहाँ के विद्यार्थी भी बाहर के देशों से पढ़ पढ़ कर आये हैं और उनमें देश-प्रेम के भाव जागृत हो गये हैं। एकता तथा बिदेशियों के विरुद्ध पारस्परिक प्रेम और सहयोग करने की इच्छा का प्रादुर्भाव हुआ है। चीन के लोग चाहते हैं कि मंचुको का राज्य उन्हें वापस मिले, कोरिया और फ़ार्मोसा के लोग जापान से स्वतन्त्र होकर अपने देश का शासन अपने हाथ में लेवें।

इसके विपरीत जापान उत्तरी चीन में अपना सिक्का जमाना चाहता है। १९३५ ई० में जापान ने उत्तरी चीन में हापी, शैएटङ्ग, शाँसी, चहार को मिलाकर एक राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया, जो पूर्ण रूप से सफल न हुआ और जापान को केवल पूर्वी हापी का राज्य स्थापित करा कर सन्तोष करना पड़ा।

पिछले ३६ वर्षों में जापान पीपिंग से टेन्टसिन तक के स्थान में अपनी एक सेना रक्खे हुए है। इस बार ७ जुलाई १९३७ ई० को पीपिंग और समुद्र के किनारे के बीच लोकचिश्राओ में जापानी-चीनी सेनाओं में झगड़ा हो गया। यह हम नहीं कह सकते कि किसका दोष था। दो दिन की मार-काट के बाद यहाँ शान्ति हुई, परन्तु उसी साल अगस्त में शांघाई में एक दुर्घटना हो गई जिससे युद्धाग्नि फिर प्रज्वलित हो उठी और जापान और चीन में घमासान युद्ध होने लगा और अभी हो रहा है।

चीन की राजनैतिक रूप रेखा

चीन का शासन विधान सहस्रों वर्ष से करीब करीब एक ही ढर्रे पर चला आ रहा था। चीन की जनता, नई रोशनी से बिल्कुल बेखबर, अपने पुराने राजाओं की गवर्नमेएट से सन्तुष्ट थी। १९ वीं शताब्दी के आखिर तक यही हाल रहा। किन्तु यूरूपियन जातियों के संसर्ग में आने पर चीन वालों को भी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली की बू लगी। विचार शील व्यक्तियों ने देखा कि अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र और फ्रांस आदि प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र हर क्षेत्र में उन्नति कर रहे हैं, अतएव वे लोग भी चीन में प्रजातन्त्र की स्थापना का स्वप्न देखने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि यह युग प्रजातन्त्र का है, प्रजातन्त्र के बग़ैर वर्त्तमान युग में कोई राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता।

फलस्वरूप १९११ में चीन की सुप्रसिद्ध क्रान्ति हुई, और मंचू वंश के राजा को सिंहासन परित्याग करना पड़ा। चीन में पहली बार प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। १९११ में चीन के शासन की बागडोर प्रजातन्त्र के हाथों में चली तो गई, किन्तु समूचे देश में एक प्रकार की अशान्ति फैल गई। सेठ, साहूकार, जमीदार और सामन्त तथा फौजी सरदार मंचू घराने के बादशाहों की अयोग्यता और कुप्रबन्ध से तंग आ गये थे, और इसी कारण १९११ की क्रान्ति में उन्होंने क्रान्तिकारियों का साथ भी दिया, किन्तु इन लोगों के दिमाग़ में क्रान्ति के बाद की तसवीर बिल्कुल साफ़ न थी। न तो पुनर्निमाण का कोई प्रोग्राम क्रान्तिकारियों के सामने था और न स्वयं इनका संगठन ही मजबूत था। देश की सन्तुष्ट साम्राज्य विरोधी शक्तियों का उतावली में तैयार किया हुआ यह एक संयुक्त मोर्चा था। अतएव १९११ के बाद के ज़माने में भी यद्यपि शासन की बागडोर प्रजातन्त्र के हाथों में थी, तो भी जनता का कुछ फायदा न हो सका। शासन सत्ता कुछ थोड़े से फौजी जेनरल और उच्च पदाधिकारियों के हाथ में थी। ये लोग अपने निज के फायदे के लिये राष्ट्र के हित की रत्ती भर भी परवा नहीं करते थे। विदेशी राष्ट्रों से रुपये लेकर मनमानी तरह से सन्धि करते, व्यापार करने के लिये उन्हें विशेषाधिकार सौंपते।

चीन की इस क्रान्ति के प्रमुख प्रवर्तक डा० सन्-यात सेन बड़े क्षुब्ध हुए। आखिर उन्होंने उक्त प्रजातन्त्र की सत्ता न स्वीकार कर दक्षिण चीन में एक अलग प्रजातन्त्र की स्थापना की, जिसमें राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्रात्मक अधिकार और देश की गरीबी दूर करने की आवश्यकता पर जोर डाला गया। डा० सन् यात-सेन ने इन्हीं दिनों कूमिङ्गटांग (नेशनलिस्ट) पार्टी की नीव डाली। इस पार्टी ने वर्षों के अथक परिश्रम से उपरान्त १९२८ में चीन के केन्द्रीय प्रजातन्त्र के अधिकारियों को परास्त किया, और नानकिङ्ग नेशनलिस्ट गवर्नमेन्ट की स्थापना हुई। आजकल चीन के प्रजातन्त्र शासन की बागडोर इसी नेशनलिस्ट पार्टी के हाथों में है। नेशनलिस्ट पार्टी के

अतिरिक्त चीन में कम्यूनिस्ट पार्टी भी एक मजबूत संस्था है। इन राजनीतिक दलों पर हम आगे चल कर प्रकाश डालेंगे। अभी हम वर्त्तमान शासन विधान आप के सामने रखते हैं।

चीन के वर्त्तमान शासन विधान की आधार शिलाएं डा० सनयात सेन के तीन सुप्रसिद्ध सिद्धान्त हैं। राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र वाद और जीविका का प्रश्न। शासन विधान बनाते समय इस बात पर काफी जोर दिया गया कि चीन को एक स्वतन्त्र और प्रतिष्ठित राष्ट्र बनाना जरूरी है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में इसे भी स्थान मिले, और ऐसा होना तभी सम्भव है जब विदेशी साम्राज्य वाद से चीन का पीछा छूटे। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार चीन की जनता को बराबरी का हक़ मिलना चाहिये। पुरुष स्त्री, गरीब या धनी व्यक्तियों में राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। तीसरे सिद्धान्त के लिये डा० सनयात सेन ने समाजवाद का सहारा लिया क्योंकि पूंजीवाद बेकारी और भूक के प्रश्न को हल कर ही नहीं सकता। मेन्शियस की फिलासफ़ी की भी उसने सहायता ली। मेन्शियस का कहना था कि एक आदर्श गवर्नमेंट को प्रजा की जीविका का प्रश्न सबसे पहले हल करना चाहिये।

शासनविधान

डा० सन-यात-सेन निरे स्वप्न देखने वाले व्यक्ति न थे। उन्होंने पूरा शासन विधान पांच विभागों में बाँटा, और विधान को पूर्णतया काम में लाने के लिये उन्होंने अपने प्रोग्राम को तीन भागों में रक्खा, क्रान्ति का काल, विधान के लिये तैय्यारी का काल और विधान को अमल में लाने का काल। विधान के लिये तैय्यारी के काल में जन साधारण की उपयुक्त राजनीतिक शिक्षा और प्रचार की योजना रक्खी गई। इस तैय्यारी के जमाने में प्रान्तों में प्रजातन्त्रात्मक विधान चलाया जायगा, यदि प्रान्तों में यह विधान सफलता पूर्वक चलने लगा तो केन्द्रीय विधान भी पूर्णतया प्रजातन्त्रात्मक बना दिया जायगा।

चीन की नेशनल गवर्नमेंट की स्थापना नानकिंग में १० अक्टूबर १९२८ को हुई। जैसा हम अभी कह आये हैं, नेशनल गवर्नमेंट का संचालन मुख्यतः कूमिङ्गटांग पार्टी के हाथों में है। १८ जून १९२९ को कूमिङ्गटांग पार्टी ने निश्चय किया कि विधान को पूर्णतया प्रजातन्त्रात्मक बनाने के लिये १९२९ से १९३५ तक समय निर्धारित किया जाय। अतएव इस बीच चीन का शासनविधान पाँच विभागों के हाथ में रहेगा। विभाग युआन (Yuan) के नाम से पुकारे जाते हैं। इन पाँचों विभागों के ऊपर स्टेट काउन्सिल (State Council) का नियन्त्रण रहता है। इस स्टेट काउन्सिल में प्रेसिडेण्ट के अतिरिक्त ३२ सदस्य और होते हैं। हर एक विभाग में एक चेयरमैन होता है, और उसकी सहायतार्थ अनेक मंत्री। नीचे हम नेशनलिस्ट गवर्नमेंट का शासन विधान दे रहे हैं।

स्टेट काउन्सिल, चेयरमैन [लिन सेन]

शासनविभाग	लेजिस्लेटिव विभाग	न्यायविभाग	परीक्षाविभाग	सेन्सर विभाग
(वांगचिंग वे)	(सनफो)	(चूचेंग)	(ताईचुआन शिन)	(यूयूजेन)

उक्त शासन विधान में १९३४ में नये सुधार किये गये। इसे पूर्णतया प्रजातन्त्रात्मक बनाया गया। अब चीन की प्रजातन्त्रात्मक सत्ता जनता के हाथों में पूर्णरूप से आ गई। तमाम नागरिक जिनकी अवस्था २० वर्ष से ऊपर हो, चाहे वे किसी ख्याल या धर्म के क्यों न हो, वोट दे सकते हैं। इस प्रकार 'नेशनल कांग्रेस' का चुनाव होता है। और यह नेशनल कांग्रेस ३१ प्रतिनिधि चुनेगी जो 'पीपुल्स कमेटी' बनायेंगे। कांग्रेस ही प्रजातन्त्र के लिये सभापति और सभापति चुनेगी।

साथ ही साथ पांच युवानों के लिये भी प्रेसिडेण्ट के चुनने का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त है। इस प्रकार गवर्नमेंट के सभी उच्च पदाधिकारी जनता द्वारा चुने जाते हैं। प्रेसिडेण्ट ७ वर्ष के लिये एक बार चुना जाता है। यद्यपि प्रेसिडेण्ट कांग्रेस के प्रति अपने कामों के लिये उत्तरदायी है, फिर भी उसे कुछ ताना-

शाही के भी अधिकार मिले हैं। केन्द्रीय गवर्नमेंट के अतिरिक्त प्रान्तीय, जिले और म्यूनिसिपैल्टी की लोकल गवर्नमेंट के लिये नियम और कानून बनाए गये।

चीन में दो प्रधान नीति के दल हैं। एक कूमिङ्गटांग और दूसरा साम्यवादी। कूमिङ्गटांग (नेशनलिस्ट) पार्टी के हाथों में नेशनलिस्ट गवर्नमेंट है। साम्यवादी दल ग़ैर कानूनी करार दिया गया था किन्तु पिछले साल से कूमिङ्गटांग पार्टी (गवर्नमेंट) और साम्यवादी दल में समझौता हो गया है। जापानियों के खिलाफ़ दोनों ने मिल कर संयुक्त मोर्चा क़ायम किया है।

राजनैतिक दल

यह पार्टी डा० सनयातसेन के तीन सिद्धान्तों (राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्रात्मक अधिकार भूख और बेकारी के प्रश्न) को मानती है। चीन की वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों को यह अन्यायपूर्ण मानती है और उन्हें रद्द कर दूसरी सन्धियाँ करना चाहती है। विदेशियों को चीन में विशेषाधिकार देने के पक्ष में नहीं है। देश के भीतर आर्थिक पुनर्सङ्गठन करने का प्रोग्राम पूरा करना चाहती है। शासन के लिये नानकिङ्ग में केन्द्रीय सरकार के हाथों में प्रान्तीय शासन का नियन्त्रण देने के पक्ष में है। पिछले साल तक यह पार्टी साम्यवादी का घोर दमन करती रही थी, किन्तु अब कम्युनिस्ट पार्टी से समझौता कर लिया है। धीरे धीरे इस दल का सञ्चालन भी चियांग काई-शेक तथा अन्य समर नायकों के हाथ में ही चला गया। नतीजा यह हुआ कि इस गवर्नमेंट की नीति जनसाधारण के हितसाधन की जगह पूँजीपतियों और महाजनों के मुनाफे बढ़ाने की हो गई। पार्टी की इस नई पालिसी से असन्तुष्ट होकर इस पार्टी में एक गरम दल उत्पन्न हुआ जो विदेशी ताक़तों को चीन से एक दम हटा देने के पक्ष में है। इस दल की राय में विदेशी शक्तियों के संग की गई सन्धियाँ अन्याय पूर्ण हैं। अतएव उन्हें तोड़ देना चाहिये। चीन के बन्दरगाह तथा अन्य तिजारती शहर जो विदेशियों के कब्जे में हैं, उन्हें भी वापस लेने के पक्ष में यह दल है कूमिङ्गटांग पार्टी के कुछ प्रमुख सदस्य ये हैं:—

कूमिङ्गटांग पार्टी

पार्टी के प्रमुख सदस्य

माओ-त्संग (प्रेसिडेण्ट, सोवियट रिपब्लिक आव चाइना) च्यूतेह (लाल सेना के सेनापति) चेन नसेह (सेक्रेटरी)।

चीन का साम्यवादी दल

चीन के साम्यवादी तथा वहाँ की साम्यवादी लाल सेना के बारे में अकसर समाचार पत्रों द्वारा हमें तरह तरह की बातें मालूम होती रहती हैं, किन्तु इनमें अधिकांश तो अधूरी और पक्षपात पूर्ण होती हैं। जापानी लोग और स्वयं चीनी पूँजीपति चीन के साम्यवादियों को डाकू और लुटेरों के नाम से अब तक पुकारते रहे हैं, किन्तु अब समूचे संसार पर सत्य प्रगट हो गया है, अतः ऐसी फजूल बातें अब नहीं सुनने में आतीं।

अभी कुछ दिनों पूर्व तक चियांग-काई शेक की नेशनल गवर्नमेंट जी जान से प्रयत्न कर रही थी कि चीन के साम्यवादी दल को नष्ट कर दे। केवल इसी बात से हम अन्दाज़ लगा सकते हैं कि इस दल का महत्व कितना अधिक है।

चीन का साम्यवादी आन्दोलन वास्तव में वहाँ के किसानों की जागृति का आन्दोलन है। यद्यपि जापानी एजेन्टों ने सभ्य संसार के सामने सदैव यह बात रक्खी है कि रूस की साम्यवादी सरकार ही चीन के साम्यवादी आन्दोलन को बल प्रदान कर रही है ताकि चीन सरकार से जापान का घनिष्ट सम्बन्ध न हो सके। किन्तु वास्तव में बात यह नहीं है। चीन में क्रान्ति की सामग्री तो यूं ही मौजूद थी। हाँ रूस की सफलता ने चीन के साम्यवादियों के मन में आशा का सञ्चार अवश्य किया। साम्यवाद

के सिद्धान्त में उनका विश्वास और भी दृढ हो गया।

अब हम चीन के राजनैतिक इतिहास पर एक दृष्टि डालेंगे। १९११ में मंचू खानदान को हटाया गया। सम्राट की जगह प्रजातन्त्र की पार्लियामेंएट कायम की गई। देश का शासन भार इसके ऊपर सौंपा गया। १९११ की क्रान्ति के पीछे भी किसानों की शक्ति थी। चारो ओर भीषण गरीबी और भरभुखी छाई हुई थी। किसानों को विश्वास हो गया था कि वर्तमान शासन पद्धति में अवश्य दोष है। काश्तकारी के कानून, सरकारों के जुल्म और बाजार में गल्ले का भाव सभी कुछ किसानों को पीसे डाल रहे थे। देहात की जनता दो भागों में बंटी हुई थी। एक तो गरीब काश्तकार जो टैक्स, लगान और बेगार के बोझ से मरा जाता था और दूसरा जमींदार और महाजन जो सूद और मालगुजारी के नफे से अपनी तिजोरियाँ भरते थे। हाँ तो यह सही है कि १९११ की क्रान्ति के पीछे किसानों की शक्ति थी, किन्तु इस क्रान्ति से उनका कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। काश्तकारी के कानूनों में परिवर्तन करने की जबरदस्त आवश्यकता थी, किन्तु पार्लियामेंएट ने इस प्रश्न पर विचार तक नहीं किया। पार्लियामेंएट के लगभग सभी सदस्य जमींदार या साहूकार वर्ग के थे।

१९२७ से चीन की राजनीति का नया अध्याय आरम्भ होता है। चीन की कूमिङ्गटाँग पार्टी ने रूस की सहायता से चीन की गवर्नमेंएट का पुनर्संगठन किया और दक्षिण चीन पर अपना प्रभुत्व जमा कर नानकिङ्ग में नेशनल गवर्नमेंएट स्थापित की। देश के सभी गरम दलों ने कूमिङ्गटांग के साथ सहयोग किया। साम्यवादी दल, जो १९२० में कायम हुआ था, उसने भी कूमिङ्गटाँग की सहायता की। किन्तु कूमिङ्गटांग में अधिकांश फौज के अफसर तथा धनिकवर्ग के लोग थे। अतएव कूमिङ्गटांग को जमीन्दारों के खिलाफ कानून बनाने में स्वभावतः हिचक होती थी। वे सुधार के समर्थक तो थे, किन्तु जमींदारी प्रथा में वे किसी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं चाहते थे। नतीजा यह हुआ कि जब साम्यवादी दल गाँव के किसानों का साम्यवादी दल पर संगठन करके उनकी सोवियट (पञ्चायत) कायम करने लगा, तो नेशनल गवर्नमेंएट को बहुत बुरा मालूम हुआ और कूमिङ्गटांग ने साम्यवादी दल से अपना सब नाता तोड़ लिया और उन्हें कुचल देने का प्रयत्न करने में लग गया।

इस प्रकार चीन का गृह-युद्ध आरम्भ हुआ। एक ओर नेशनल गवर्नमेंएट और दूसरी ओर साम्यवादी दल और उसकी लाल सेना। १९३० में नानकिङ्ग नेशनल गवर्नमेंएट उत्तर चीन में झगड़े फसाद को दूर करने में व्यस्त रही। इस मौके का लाभ साम्यवादी दल ने भरपूर उठाया और 'कियान्सी' प्रान्त में अपनी निज की गवर्नमेंएट कायम की। इस साम्यवादी गवर्नमेंएट के बारे में एक अँग्रेज लेखक लिखता है:—

"एशिया में सब से विचित्र यह गवर्नमेंएट थी। इसने समाज का रूप रंग बदला, करेन्सी नये ढंग पर चलाया, शादी व्याह के कानून बदले और नये ढंग से स्कूल और यूनीवर्सिटियाँ चलाईं। इस सोवियट सरकार (साम्यवादी गवर्नमेंएट) ने साम्यवाद पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित कराईं। निज के अखबार निकाले। इस सोवियट सरकार की अपनी निज की फौज है। जमींदारों के अधिकारों में भारी कमी की गयी है।

इन सोवियट प्रान्तों में अफीम की तिजारत एक दम बन्द है, वेश्या-वृत्ति भी नहीं देखने को मिलती, तथा सूदखोरी जुर्म करार दी गयी है। वेश्याओं को मकान और खेत गवर्नमेंएट की ओर से मिले हैं, ताकि वे गृहस्थ की तरह जिन्दगी बसर कर सकें। सरकारी कर्मचारियों को घूसखोरी के लिये कड़ा दण्ड मिलता है। अकाल तथा बाढ़ की आफत दैवी नहीं होती वरन् आदमी की गलतियों से होती है। ऐसा साम्यवादियों का विश्वास है, और दोनों ही रोके जा सकते हैं। बेकारी का प्रश्न भी चीन के सोवियट प्रान्तों में अब नहीं है।"

इस साम्यवादी सोवियट सरकार के प्रति जनता के हृदय में एक अपूर्व श्रद्धा और विश्वास है। इस सोवियट की रक्षा का भार साम्यवादी लाल सेना पर है। इस लाल सेना को दबाने तथा

कुचल देने के लिये चियांगकाईशेक की नेशनल गवर्नमेंट ने कई बार प्रयत्न किये हैं, किन्तु बार बार लालसेना ने सोवियट की रक्षा की है। इसी गृहयुद्ध के कारण जापान की बन आई। कम्यूनिस्टों का दमन करते समय जापान चियांग-काई-शेक के साथ मिल कर गृह विवाद को उत्तेजित कर देता और जब समग्र देश सङ्घबद्ध होने लगता, उस समय चियाङ्गकाईशेक के विरोधियों को उभाड़ कर अपना काम निकालता। अब तक चीन में जापान की कूटनीति के ये ही सब खेल होते आ रहे थे। इस सम्बन्ध में एक घटना का जिक्र कर देना अनुचित न होगा—

इसी वर्ष जनवरी में चियाङ्क-काई-शेक ने उत्तर चीन के कम्यूनिस्टों का दमन करने के लिये जनरल चाङ्ग सुइलियाङ्ग को एक मञ्चूरियन सैन्य दल के साथ वहाँ भेजा। किन्तु कम्यूनिस्टों के साथ लड़ने की इच्छा इन मञ्चूरियन सैनिकों की नहीं थी। जापानियों ने उनके देश पर अधिकार कर लिया था, इसलिये जापानियों के ही ऊपर उनका क्रोध था, और वे जापानियों के साथ ही लड़ने के लिये व्यग्र थे। हजारों की संख्या में ये मञ्चूरियन सैनिक साम्यवादी लालसेना से मिल गये, यहाँ तक कि नानकिङ्ग नेशनल सरकार के सेना के तीन सेनाध्यक्ष कम्यूनिस्ट नेताओं के परामर्श के अनुसार चल रहे थे। ऐसी हालत देख चियाङ्ग-काई-शेक ने स्वयं सियान जाने का विचार किया। वे समझते थे कि सियान पहुँच कर वे शीघ्र ही कम्यूनिस्टों का दमन कर सकेंगे। किन्तु वहाँ पहुँचने पर दो ही सप्ताह के भीतर चियाङ्गकाई-शेक साम्यवादियों के हाथ नजर बन्द हो गए। बड़ी मुसीबत में प्राण फंसे। उनसे कहा गया "जापानी साम्राज्य वाद तुम्हें निगले जा रहा है, और तुम कान में तेल डाले पड़े हुए हो। यह आलस्य त्यागो, उठो, आगे बढ़ो, कमर कसो, जूझो, मरो मारो और आजादी को हाथ से जाने न दो"। बहुत कुछ परामर्श के बाद जब चियाङ्क काई शेक साम्यवादी दल के अनुकूल अपनी नीति में परिवर्त्तन करने के लिये कुछ राजी हुए, तब आप मुक्त किये गये। फल स्वरूप चीन का गृह युद्ध बन्द हो गया। चियाङ्गकाईशेक ने कम्यूनिस्टों को दमन करने वाली अपनी भ्रान्ति मूलक नीति त्याग दी। कम्यूनिस्टों के साथ कुमिङ्गटाँग को मैत्री-आबद्ध होना पड़ा। चीन जापान की लड़ाई में चीन की ये दोनों पार्टियाँ संयुक्त मोर्चा बना कर लड़ रही हैं। चीन की वर्तमान जागृति के पीछे वहाँ के साम्यवादी दल की शक्ति है। सन् १९३१ में जब जापान ने मञ्चूरिया पर जब जबर्दस्ती दखल जमा लिया था, उस समय जो चीन था, आज वह चीन नहीं है। कम्यूनिस्ट और कुमिङ्गटाँग इन दो दलों के बीच उन दिनों जो संघर्ष था, आज नहीं है। जैसा कि हमने ऊपर कहा, है ये शक्तियाँ स्वदेश रक्षा के लिये आज कन्धे से कन्धा मिला कर जापान की साम्राज्य लिप्सा का सामना करने के लिये रण प्राङ्गण में उतर आई हैं। भविष्य के गर्भ में क्या निहित है ? इस प्रश्न का उत्तर कौन दे ?

युद्ध क्यों ?

[लेखक—श्रीयुत सीताराम अग्रवाल]

सन १९३७ की जुलाई के आरम्भ से ही चीन जापान की यह मौजूदा लड़ाई जारी है। चीन-जापान की आपस की लड़ाई बहुत पुरानी है। यदि इसके इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलता है कि १८९५ में ही जापान ने चीन से फ़ार्मोसा द्वीप हड़प लिया था। फिर १९१० में बेधड़क कोरिया पर भी कब्ज़ा जमा लिया। इसके बाद १९१५ में जब संसार के बड़े बड़े राष्ट्र महायुद्ध में फँसे थे, तब जापान ने चीन से जबर्दस्ती अनेक शर्तें अपने मतलब की मंजूर करवाईं। फिर इन जीते हुए हिस्सों में अपने को मज़बूत बना लेने की व्यवस्था में जापान को कुछ समय लग गया और वह करीब १९३० तक चुप रहा

१९३१ में जापान ने पुनः पूर्व एशिया में अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिये पाँसा फेंका, और कोरिया से आगे बढ़ कर मंचूरिया पर कब्ज़ा जमाया। जापान की इस धृष्टता पर चीन ने संसार के अन्य सभ्य राष्ट्रों तथा राष्ट्रसंघ से भी बहुत कुछ आरज़ू मिन्नत की। पर जापान ने इसकी रत्ती भर भी परवाह न की। अन्य राष्ट्र भी कुछ न कर सके। नतीजा यह हुआ कि मंचूरिया में जापान का आधिपत्य स्थापित हो गया।

जापान की इस विजय ने संसार के अन्य राष्ट्रों को चकित ही नहीं वरन काफी सतर्क भी बना दिया। परिणामस्वरूप चीन के इन प्रान्तों के हथियाने के अतिरिक्त जापान चीन के व्यापार की बन्दर-बाट में शामिल कर लिया गया। जापान की साम्राज्य लिप्सा अभी इतने ही से शान्त न हुई। देश के औद्योगिक प्रगति व आबादी के कारण इसे एक ऐसे भूभाग की आवश्यकता हुई जहाँ वह अपना माल खपा सकता, बढ़ती हुई जनता को बसा सकता तथा जहाँ से वह अपने उद्योग धन्धों के लिये कच्चा माल भी पा सकता।

चीन के कोरिया व फ़ारमोसा को हथिया लेने पर भी जापान की यह प्यास न बुझी अतः वह अब चीन के उन प्रदेशों की ओर नज़र रखने लगा जिनमें आबादी कम व कच्चे माल तथा खनिज प्राप्ति के साधन सुलभ और बहुतायत से होते हुए भी प्राप्य हों। इनके सिवाय वह रूस के निर्जन प्रदेश साइबेरिया पर भी दाँत लगाये था। जापान मंचूरिया के दक्षिण में मङ्गोलिया के जेहोल प्रान्त पर सन १९३२ से तो काबिज़ था ही पर अब वह उत्तरी चीन के सुइयान, चहार, होपेह, शान्सी व शांटुंग प्रदेशों पर कब्ज़ा करने की पूरी फिक्र में लग गया।

जापान के सौभाग्य से इन प्रदेशों में (उसकी परम अभिलाषा को पूरी करने वाली) खनिजात्मक सम्पत्ति की कमी नहीं है। और दक्षिण के दोनों प्रदेश तो बस्ती बसाने के लिहाज़ से भी उपयुक्त हैं।

जापान केवल अपने साम्राज्य विस्तार के लिये ही चीन से मुठभेड़ लेने पर उद्यत हुआ है, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि इन प्रदेशों में सोवियट रूस की प्रतिद्वन्द्विता भी पूरी सहायक है। अतः यह स्पष्ट है कि चीन के कुछ प्रदेशों में रूस व जापान की होड़

भी चीन जापान के इस संघर्ष का कारण है, बल्कि इसे एक मुख्य कारण भी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। यही कारण है कि चीन में जापान का विरोधी रूस के सिवा और कोई नहीं है।

जापान ने जिस भाव को लेकर चीन पर आक्रमण किया था उसका परिणाम उलटा होता दिखाई पड़ रहा है। इस युद्ध को आरम्भ हुए लगभग ७ महीने हो गये हैं, यदि अब यह कुछ दिन भी और चला तो इसका परिणाम भी जापान के लिये यह होगा कि उसकी बिगड़ी हुई आर्थिक अवस्था और भी बिगड़ जायगी, और सम्भव है चीन की भी हानि उसकी अपेक्षा अधिक हो और उसकी लाखों वर्गमील भूमि तहस नहस हो जाय तथा जनता के जन धन की भी भीषण हानि हो।

अब सवाल यह उठता है कि क्या चीन की जान का प्यासा केवल जापान ही है या और भी कोई! यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि चीन में, जापान की प्रगति के विरोधी रूस के अतिरिक्त ब्रिटेन और अमेरिका भी हैं। ब्रिटेन अपने व्यापार व एशिया में अव्यवस्थित साम्राज्य की रक्षा के हेतु चीन में जापान को शक्तिशाली नहीं देखना चाहता। यद्यपि चीन के इन पाँचों प्रदेशों से ब्रिटिश साम्राज्य के किसी अंग का सम्बन्ध नहीं है, किन्तु दक्षिण मङ्गोलिया में जापानी सेनाओं के पहुँच जाने से चीनी तुर्किस्तान की सीमा तक, जापानी साम्राज्य कायम हो जाता है। दूसरी बात यह है कि भारत की उत्तरी सीमा भी इसी तुर्किस्तान से मेल खाती है और इस स्थल मार्ग द्वारा, स्याम की मदद से और जल द्वारा भी, जापान सोने की चिड़िया तक पहुँचने का पूरा प्रबन्ध कर सकता है। यही भय ब्रिटेन को भी सदा सशंक बनाये रखता है।

इतना ही नहीं जापान तो अपनी बढ़ती हुई आबादी के लिये आस्ट्रेलिया में भी कुछ भूभाग चाहता है, यह बात भी ब्रिटेन व जापान के विरोध का एक मुख्य कारण है।

अमेरिका के फिलिपाइन-टापू चीन के निकट ही हैं। इन टापुओं में शक्कर की पैदावार बड़ी प्रचुरता से होती है तथा युद्ध की दृष्टि से भी प्रशान्त-महासागर में इन टापुओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है, इसके अतिरिक्त अमेरिका की अरबों डालर की पूँजी चीन में लगी हुई है। इन्हीं कुछ कारणों से अमेरिका, जापान की इस प्रगति का विरोध करना चाहता है और अपने दरवाजे पर से बैठा बैठा गुर्रा रहा है, क्योंकि उसे इस बात का पूरा भय है कि चीन को जीत कर जापान कहीं अमेरिका के साथ चलते हुए व्यापार को न रोक दे वरना अमेरिका को बड़ा भारी धक्का पहुँचेगा। साथ ही यह भी तो स्पष्ट है यदि जापान इतना करने की हिम्मत रखता है तो अमेरिका और ब्रिटेन मिल कर, जापान का बहिष्कार भी कर सकते हैं और ऐसी आशा प्रगट की जाती है कि यदि इसकी नौबत आई तो जापान को जान के लाले पड़ जायँगे।

इलाहाबाद की कांग्रेस शोशलिस्ट-पार्टी की तरफ से अभी एक पैम्फलेट प्रकाशित किया गया था। उसे पढ़ने से तो प्रतीत होता है कि जापान ने अमानुषिकता की हद कर दी है। और यह बात सच भी है। इस समय संसार के किसी राष्ट्र की सहानुभूति जापान के साथ नहीं है। जर्मनी और इटली भी हृदय से ऐसे कार्य को प्रोत्साहन नहीं दे सकते, चाहे वे गला फाड़ कर क्यों न कहा करते हों कि 'मैंने कमर कस ली है, और मैं अपने प्रदेश वापस लूँगा" आदि......। पर यह बात तो सभी समझ सकते हैं कि आगामी युद्ध का उतने भयंकर रूप में घटित होना, जैसा कि उसके विषय में अनुमान किया जाता है, असम्भव है। इसी पेम्फलेट में चीन जापान युद्ध का कारण यह बतलाया गया है, कि "सात जुलाई का वाकया है—पेपिंग के समीप जापानी सैनिक चाँदमारी की प्रेक्टिस कर रहे थे! इस सिलसिले में आधी रात के बाद इन सैनिकों ने अपने एक सिपाही को ढूँढ़ने के बहाने पेपिंग शहर में घुसना चाहा। इस शहर में घुसने का कोई भी हक़ जापानियों को नहीं था। नगर के चीनी अधिकारियों ने जापानी सैनिकों को शहर में घुसने की आज्ञा न दी। जापानियों को बहुत बुरा मालूम हुआ, उन्होंने चीनी सन्तरियों पर हमला कर दिया। निदान चीनी गार्डों को भी अपने बचाव के लिये गोलियाँ चलानी पड़ीं। बस जापान को चीन से युद्ध छेड़ने का अच्छा बहाना मिल गया......।"

खैर, हमें इससे बहस नहीं है कि युद्ध कैसे छिड़ा, उसे तो छिड़ना ही था, इस कारण से न छिड़ता तो दूसरा तैयार था, पर यहाँ तो शेर और भेड़िये का मसला आ पड़ा था। अगर भेड़िया नीचे पानी पीने के कारण नदी का पानी गँदला नहीं कर सकता था तो उसके बाप ने जो एक मर्तबा शेर को गाली दी थी उसका बदला तो वह लेगा ही।

पर यह आशा न थी कि जापान इतना अमानुषिक होकर युद्ध नीति के भी विरुद्ध कार्य करने लगेगा जितना कि वह कर रहा है। जापान की नृशंसता दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है और चीनी जनता निरन्तर हज़ारों की संख्या में विध्वंस हो रही है।

नानकिंग को तो जापानियों ने बमवर्षा से निर्जन बना डाला है। इधर कुछ दिन हुए कई स्थानों पर लगातार २४ घंटे बमवर्षा की गई—शहर के निरीह प्राणियों पर लगभग ९०० बम बरसाये गये।

जापानियों ने चीनी सैनिकों को अधिक भयभीत करने के लिये चीन के जिन प्रधान नगरों पर हवाई हमले किये थे उनके कारण वे शहर प्रत्यक्षरूप में विध्वंस हो चुके हैं। लाखों जापानी सैनिकों और सैकड़ों वायुयानों के कुकृत्य से असंख्य चीनी नागरिकों की सम्पत्ति की हानि ही नहीं हुई है वरन् कितने ही शान्तिप्रिय और निर्दोष जनता के प्राण भी हर लिये गये हैं।

चीन के शान्सी प्रान्त से श्रीमती एग्निसस्मेडली ने वहाँ के घायल चीनी सिपाहियों का दर्दनाक वर्णन यों किया है—

"हमें राह में आहत सिपाहियों से भरी हुई कई गाड़ियाँ मिलीं। नित्य प्रायः एक हज़ार आहत दक्षिण ले जाये जाते हैं। उन्हें खुली मालगाड़ियों से ले जाया जाता है, और उनमें भी इतनी भीड़ रहती है कि लेटना असम्भव हो जाता है। ह्वाँग-हो (पीली नदी) के तट पर चार पाँच सौ सिपाही तट पर पड़े हुए थे। और यात्रा में एक महीना लग गया था। दो सप्ताह से उनकी पट्टियाँ नहीं बदली जा सकी थीं। जख्मों की सड़न से वे मर रहे थे। घायलों के साथ डाक्टर, नर्स, या प्राथमिक सहायता देने वाले भी कोई नहीं थे—वे स्वयं एक दूसरे की मरहम पट्टी (!) करते हैं, या कभी साथ आये हुए किसान भरसक मदद करते हैं।

चीनी सेना के चिकित्सा विभाग के अफसर से बात करने पर मुझे मालूम हुआ कि इस प्रान्त में कुल १८ अस्पताल हैं, जिनमें अधिक से अधिक १८ हज़ार रोगी रह सकते हैं। लेकिन दो सेनाओं से ही प्रतिदिन १००० आहत होते हैं अर्थात् मास में ३०,००० । अस्पताल में इनके दशमांश के लिये भी पट्टियाँ दवाएँ और औज़ार नहीं हैं। शीतकाल के लिये कम्बल भी नहीं है। सैकड़ों मील के उत्तरी युद्ध मुख पर केवल सात मोटर लारियाँ घायलों को लाती हैं—अधिकांश युद्ध क्षेत्र में पड़े पड़े सड़कर मर जाते हैं।"

इधर तो चीन की यह दशा हो रही है और उधर चीन पर आक्रमण करते समय जापानी सेना के अधिनायक, जनरल मात्सुई कहते हैं—"अपने जीवन के पिछले तीस वर्ष मैंने जापान और चीन का सहयोग बढ़ाने में बिताये हैं। अब भी मेरे हृदय में चीन को दण्ड देने की नहीं, उसकी चालीस करोड़ प्रजा को उबारने की इच्छा है......मेरा दृढ़ विश्वास है कि परम्परागत नैतिक विधान के अनुसार जापान की नवजाग्रत राष्ट्र-भावनाओं को इसी प्रकार के आत्मत्याग में प्रगट होना चाहिये—त्याग जापानी चरित्र का मुख्य गुण है।"

इसी प्रकार अबीसीनिया पर आक्रमण करते समय डूची (मसलिनी) ने भी तो कहा था—'इथियोपिया में भेजे गये इटालियन सैनिक नहीं सभ्यता के दूत हैं। हमारा उद्देश्य है कि इथियोपियन लोगों तक पाश्चात्य संसार की सब से उन्नत सभ्यता का सन्देश पहुँचाएँ।"

धन्य है, इन राष्ट्रों की ऐसी पर-राष्ट्र सेवा! लाखों सैनिकों तथा निर्दोष नागरिकों व सर्वथा निर्दोष और अबोध स्त्री और खेलते हुए बच्चों के प्राण हर कर उन्हें 'आत्म-त्याग' तथा 'उन्नत सभ्यता' का सन्देश पहुँचाया जा रहा है।

भारतवासियों के लिये तो संसार के समाचार पाना भी काफी कठिन है, क्योंकि हमें ज्ञान-विज्ञान और राजनीति—समाजशास्त्र आदि भयङ्कर छूत-रोगों से सुरक्षित रखने के लिये ब्रिटिश सरकार काफी

प्रयत्न शील है (!) फिर भी उनकी असावधानी से जो हमें खबरें कभी कभी कट-छँट कर मिल जाया करती हैं उनसे पता चलता है कि अब जापानी सैनिकों ने चीन के साथ और भी सख्ती करने का निश्चय कर लिया है। इनकी आयोजना सुनने लायक है—

कहते हैं कि जापान अब ऐसे गैस-बमों का प्रयोग करेगा जो कि हजारों आदमियों के प्राण क्षणों में हर लिया करेंगे। इनके आग लगाने वाले बम ऐसे होंगे जो शहर के गैस-पाइपों को तोड़ कर उनमें आग लगा देंगे, आग बात की बात में शहर भर में फैल जाया करेगी। युद्ध में जिन गैसों का प्रयोग होता है वे तीन प्रकार की हैं—

१—पहली श्रेणी की गैस वे हैं जिनका प्रभाव फेफड़ों पर होगा, उनसे दम घुटने लगेगा और फेफड़े कट कट कर खून के साथ निकलने लगेंगे और इसी से आदमी की मृत्यु होगी।

२—यह गैस मस्टर्ड गैस (Mustard Gas) के नाम से प्रसिद्ध है। यह जमीन पर धुएँ के समान फैल जाती है और जिस चीज में लग जाती है वह तत्काल जल उठती है। इसके असर से मांस भी सड़ने लगता है और फेफड़े तक झुलस जाते हैं। इसके असर से भारी जलन और कष्ट होता है।

३—यह तीसरी प्रकार की गैस स्नायु पर भी अपना प्रभाव डालती है और इसके परिणाम स्वरूप मन पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके असर के कारण आदमी बे-काबू होकर इधर उधर हाथ पैर पटकता है और गैस के बुरके (Gas Mask) को उतार कर फेंकने की कोशिश करता है। इस तीसरी गैस का उपयोग दूसरी प्रकार की गैस के साथ ही किया जाता है।

इतने से ही अभी अन्त नहीं है, इन सब के अतिरिक्त भयंकर छूत के रोगों के कीटाणु भी शत्रुओं की सेना पर छोड़े जा सकते हैं। ये पानी के स्थान अथवा नदियों में छोड़े जायँगे, पर इनका अधिक प्रयोग होना सम्भव नहीं क्योंकि एक बार इनके फैल जाने से इनके प्रभाव का रोकना कठिन हो जायगा और दुश्मन तथा मित्र दोनों ही इसके घातक प्रभाव से बच न सकेंगे।

यह तो हुई गैसों की बात, पर आज के युद्धों में इनका महत्वपूर्ण स्थान नहीं है जितना कि हवाई जहाजों का। टैंक, मशीनगन, एन्टी-एयरक्राफ्ट-गन तथा डिस्ट्रोयर्स आदि का प्रयोग तो होता ही है पर वे इतने उपयोगी नहीं हैं अथवा यों कहें कि वे इतने नाशकारी नहीं हैं जितनी कि नाशकारी गैसें अथवा विविध प्रकार के बमवर्षी-वायुयान।

ऐसे युद्धों की भयङ्करता पर ध्यान देने से आदमी सिहर उठता है। जापान ने इन भयङ्कर यन्त्रों का प्रयोग करके जिस नृशंसता का परिचय दिया उसे सुन कर खून खौल उठता है। और बात तो यह है कि जब जापान ही इतनी भयङ्कर चीजों का प्रयोग कर सकता है तो ये बड़े बड़े धग्गड़ (इटली और जर्मनी किन चीजों का प्रयोग करेंगे और उस युद्ध का क्या रूप होगा इसकी आशंका ही से हम काँप उठते हैं। पिछले जर्मन-महायुद्ध ने ही यह साबित कर दिया है कि एक आधुनिक युद्ध कितना आतंककारी हो सकता है। साथ ही अब संसार की राजनैतिक परिस्थितियाँ भी खूब जटिल होती जा रही हैं। और इसमें सन्देह नहीं है कि भावी युद्ध दूर नहीं है, चाहे वह उतना भयङ्कर न हो जितना कि उसके विषय में हम कल्पना करते हैं, पर यह तो सभों को विदित है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी अपनी कमर कस चुके हैं और बैठे बैठे बस औजार पैने कर रहे हैं।

अतएव इस चीन-जापान युद्ध को उस युद्ध का अग्रदूत कह सकते हैं।

× × ×

जापान ने चीन पर ऐसे अवसर पर आक्रमण किया जो उसके आर्थिक और राजनीतिक विकास का समय था। चीन हार जरूर रहा है, पर जापान ने जितनी आसानी से चीन को जीतने का स्वप्न देखा था वह निरन्तर झूठा निकला। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी कुछ ऐसी हो गई कि रूस, चीन का प्रमुख समर्थक होते हुये भी इस लड़ाई में खुल्लमखुल्ला भाग नहीं ले सकता है। अमेरिका भी खूब गम खा रहा है और ब्रिटेन तथा राष्ट्र परिषद ने तो निरी नपुंसकता ही धारण कर लिया है, ऐसी उनसे आशा न थी।

इस समय चीन की मदद करने की हिम्मत संसार के किसी भी राष्ट्र में नहीं। चीन के सभी लोग, वहाँ के मर्द, औरतें और विद्यार्थी एक हो कर, बहादुरी के साथ अपनी आजादी के लिये जी जान से लड़ रहे हैं। गुलामी की जिल्लतों को वे पड़ोसी भारत की दशा देख कर अच्छी तरह समझ चुके हैं। अतः कोई भी चीनी व्यक्ति, शक्ति रखते हुये गुलाम बनना कैसे क़बूल कर सकता है? हम, भारतवासी भी, चीन की इस पीड़ा का अच्छा अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि हम दोनों ही एक ही पथ के यात्री हैं; दोनों ही विदेशी सत्ता के पंजे से अपना छुटकारा चाहते हैं। सभी राष्ट्र आज इस बात की पूरी कोशिश में लगे हुये हैं कि उनके राज्य का विस्तार हो जाय और गुलाम राष्ट्र इस कोशिश में है कि वे आज़ाद हो जाँय। और इधर तो लड़ाई की तैयारी में राष्ट्रों में भी दलबन्दी शुरू हो गई है।

× × ×

यह बात स्पष्ट है कि शान्तिप्रिय राष्ट्रों के सन्मुख सबसे बड़ी कठिनाई है इटली, जर्मनी और जापान का एक गुट्ट बन जाना। और उस गुट्ट से टक्कर लेना शक्तिशाली राष्ट्रों के लिये तभी सम्भव हो सकता है जब वे भी अपना एक गुट बना लें और इस गुट की शक्ति तभी काफी होगी जब उसमें ब्रिटेन, फ्रान्स, रूस और अमेरिका चारो शामिल हों। पिछले चन्द वर्षों की घटनाओं ने तो इन चारों शान्तिप्रिय, किन्तु शक्तिशाली, राष्ट्रों को भी चिन्तित और सशङ्कित कर दिया है और वे युद्ध की तैयारी में जी जान से लग गए हैं, परन्तु उनके बीच जितनी एकता की आवश्यकता है उतनी एकता के अभी तक कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहे हैं।

इटली जर्मनी और जापान के शासकों की महत्वाकांक्षाएँ केवल अनुचित नहीं हैं, संसार के लिये भयानक भी हैं।

एक तरफ तो जर्मनी में हिटलर जैसे तानाशाहों को हम देखते हैं और उसके विपरीत चीन में जेनरल चांग काइशेक के उदाहरण पर भी जरा दृष्टिपात करें।

कुछ दिन हुये इस बात की सूचना समाचार पत्रों में जोर कर रही थी कि चीन के कुछ प्रदेशों ने जेनरल फ्रांको की नीति का अनुकरण कर वहाँ कुछ छोटे २ स्वतन्त्र राष्ट्र बना लिये हैं। बात सच है, पर इससे हम यह नहीं कह सकते कि सम्पूर्ण चीनी जनता में अपने राष्ट्र-अधिनायकों के प्रति अविश्वास फैल गया है क्योंकि, हाल में घटित कुछ घटनाओं के आधार पर हमें कुछ विपरीत ही फल होता हुआ दिखाई पड़ा है। यह स्पष्ट है चीन का बहुमत अभी चांग काइशेक की तरफ है। कुछ दिन हुए स्यान में एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ था। इस विद्रोह के कारण जिस रहस्य का उद्घाटन हुआ उससे रहा सहा चीन भी एकता के दृढ़ सूत्र में बंध गया और एक सम्मिलित शक्ति बन कर स्वतन्त्रता के युद्ध में पूरी शक्ति के साथ हाथ बटाने लगा। इस विद्रोह का दमन करने के बाद गिरफ़ार विद्रोहियों के सन्मुख मार्शल चांग काइशेक ने जो भाषण दिया, उससे हम उनके हृदयोद्गार तथा अगाध देश प्रेम का पूरा परिचय पाते हैं।

उन्होंने कहा—"मैंने सदैव अपने देश के लिये ही काम किया है और मेरा यही दृढ़ विश्वास रहा है कि मेरे नेतृत्व में काम करने वाले कर्मचारियों को सचाई और इमानदारी अवश्य मालूम हो जाय, इसी लिये मैंने अपने व्यक्तिगत संरक्षण का कभी विशेष ध्यान नहीं रक्खा। मेरी इस असावधानी के कारण ही विद्रोही लोग परिस्थिति से लाभ उठा सके।

प्रत्येक कार्य का एक प्रारम्भिक अप्रत्यक्ष कारण होता है और इस विद्रोह का कारण मेरी व्यक्तिगत असावधानी को ही समझना चाहिये। मेरी असावधानी के कारण सेना का अनुशासन बिगड़ा तथा राष्ट्र और केन्द्रीय सरकार को अत्यधिक चिन्ता हुई। अपनी असावधानी के लिये मैं अपने को दोषी ठहराता हूँ और इसलिये राष्ट्र, सरकार तथा पार्टी के समक्ष मैं क्षमा प्रार्थना करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।"

मैं पूछता हूँ, क्या योरुप के तानाशाहों में से कोई ऐसी परिस्थिति में इतने खुले शब्दों में अपनी गलती कबूल करने का दावा कर सकता है? योरुप के जो लोग चीन में नैतिकता का अभाव पाते हैं उन्हें उक्त घटना से सबक़ सीखना चाहिये।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि चीन संसार का सबसे प्राचीन सभ्य देश है, और उसकी संस्कृति, साहित्य, सभ्यता और स्वतन्त्रता पर जो आघात किया जा रहा है उसकी रक्षा के लिए चीन की सहायता करना प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी का कर्त्तव्य है। पर जापान तो अपनी बर्बरता से चीन को हड़पता ही जा रहा है। इतने से ही उसे सन्तोष हो जाय तो बड़ी बात हो, वह तो सोते शेर को जगाने में लगा है। कई बार हमें यह खबर सुनने में आ चुकी है कि जापानी सैनिकों ने ब्रिटिश-प्रतिनिधि को घायल कर दिया। अमेरिका के झंडे का अपमान किया और उसके जहाजों पर बम वर्षा की आदि......इन बातों से तो यही स्पष्ट है कि ब्रिटेन और अमेरिका जितना इससे बचकर दूर रहना चाहते हैं उतना ही वह उनका तिरस्कार करता है।

ब्रिटेन से तो खास तौर पर उसे नाराजी मालूम होती है। और जापानी फौज के एक प्रसिद्ध अफसर ने तो यह भी घोषित कर दिया है कि जापान का यह धावा चीन पर ही नहीं है वरन् हांकाऊ होकर हांगकांग, सिंगापुर, ब्रह्मा, आसाम आदि होते हुए भारतवर्ष पर भी है। पूर्व एशिया में वह साम्राज्य स्थापित करना चाहता है।

चीन में तो युद्ध चक्र चल ही रहा है। जापान के हवाई जहाज़ निहत्थे नागरिकों पर गोलियों की बौछार कर रहे हैं। मरने वालों की संख्या बमुकाबले सैनिकों के नागरिकों की अधिक है। ७ महीने हो गये। लगातार बमबाजी और कत्लेआम का बजार गर्म है। यहां तक कि शंघाई की अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती पर भी खूब गोला बारी हुई है। संसार के सभी राष्ट्र जापान के इस अनुचित हमले से क्षुब्ध हैं। सभों ने उसे दोषी ठहराया है फिर भी वह 'बेहयाई का जामा पहने' चीन में खून की नदियां बहाये जा रहा है।

जेनरल चू-तेह की अपील

[गत २६ दिसम्बर को चीन की प्रसिद्ध लाल सेना के कमान्डर-इन-चीफ़ चू-तेह ने राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल जी के पास एक पत्र भेजा है जिसमें उन्होंने चीन के लिये सहायता की याचना की है। पत्र चीनी भाषा में था, उसका सारांश हम नीचे दे रहे हैं।

---सम्पादक]

यहाँ चीन में हमें खबर मिली है कि आपने भारत में जगह जगह चीन की जनता के संग सहानुभूति प्रगट करने के लिये सभाएँ की हैं—चीन की लाल सेना (कम्यूनिष्ट) के प्रति आपने हमदर्दी दिखाई है। हम आपको हृदय से धन्यवाद देते हैं।

आप जानते हैं कि जापानियों ने हमारे कई शहरों और रेलवे लाइनों पर जबर्दस्ती कब्जा कर रक्खा है। चीन की क्रान्तिकारी लाल सेना जन साधारण का संगठन कर रही है, उन्हें हथियार दे रही है ताकि हम इस लम्बी लड़ाई के लिये अपने को तैयार कर सकें। हमें पूरा विश्वास है कि अन्त में विजय हमारी ही होगी। उत्तर चीन में जगह जगह हमारे संग मिल कर लड़ने के लिये स्वयंसेवक आते हैं, इनकी संख्या बढ़ती जा रही है, और इनकी सहायता की हमें सख्त ज़रूरत भी है। किन्तु हमारे सामने अनेक अड़चनें हैं, हमारे पास काफ़ी रुपया नहीं है। इसी समस्या को हल करने के लिये मैं आप के पास यह पत्र लिख रहा हूँ—

उन इलाक़ों में जहाँ जापानियों ने अपना कब्ज़ा जमा लिया है, हज़ारों की संख्या में मज़दूर, किसान और विद्यार्थी जापानियों के खिलाफ़ उठ खड़े हुए हैं। उन्होंने स्वयंसेवकों के जत्थे बनाये हैं ताकि साम्राज्यवादी आक्रमणकारी का वे विध्वंस कर सकें। इन लोगों के पास हथियार तो हैं, किन्तु इनके पैरों में न तो जूते हैं, और न ओढ़ने के लिये इनके पास कम्बल। कितनों के बदन पर तो काफ़ी कपड़े भी नहीं हैं। कभी कभी समूचे दिन इन्हें भूखा रह जाना पड़ता है! अभी हाल में २००० स्वयंसेवकों ने हमारी लाल सेना के संग मिल कर जापानियों का बड़ी बहादुरी के साथ सामना किया है। इन स्वयंसेवकों

जापानी जंगी जहाज पर से गोलाबारी की तैयारी।

चीन के कुछ अनाथ बच्चे, जिनके माँ बाप तथा मकान जापानी बमवर्षा से बरबाद हो गये हैं।
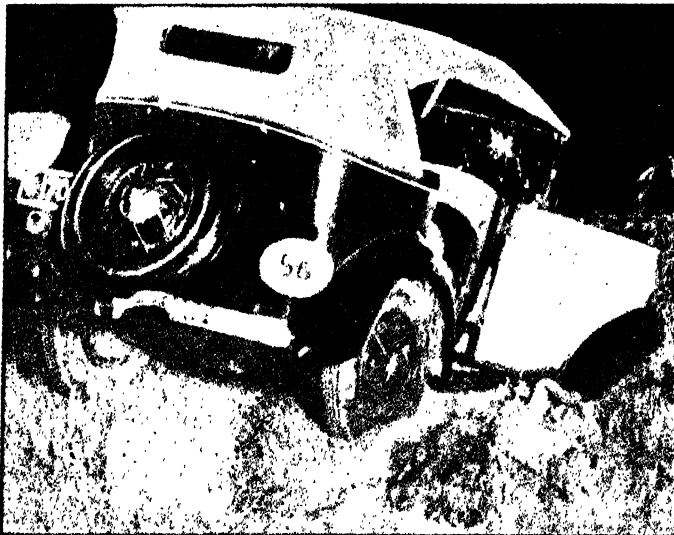
शांघाई की मोटर दुर्घटना जिसने चीन जापान युद्ध का सूत्रपात किया है।

नानकिंग में जापानी सैनिक।

के लिये हम रुपये इकट्ठे कर रहे हैं, चीन में और बाहर के देशों में भी। हमें पूरा विश्वास है कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस जिसके आप प्रेसिडेण्ट हैं, हमें अवश्य मदद पहुँचायेगी। जो कुछ भी इन स्वयं-सेवकों के लिये आप भेज सकेंगे, उसे हम सहर्ष स्वीकार करेंगे। हम जानते हैं कि आपके देश में करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं जो हमारे साथ सहानुभूति रखते हैं, और वे हमारी सहायतार्थ कुछ न कुछ अवश्य देंगे।

कमान्डर-इन-चीफ़ की हैसियत से मैं आपको—कांग्रेस को और सारे हिन्दुस्तान को—यह बतलाना चाहता हूँ कि चीन आज हताश नहीं है, वह हारा भी नहीं है। हमारी सेना उत्तर चीन से कभी पीछे न हटेगी। हम जनता के संग रहेंगे, उनका संगठन करेंगे, उन्हें हथियार देंगे, और जापान की साम्राज्यवादी फ़ौजों के खिलाफ उस वक्त तक लड़ते रहेंगे, जब तक उनके एक एक सिपाही को चीन से भगा नहीं देते—हाँ, मंचूरिया से भी उन्हें हम बाहर भगाएँगे। यह लाल सेना कभी हार नहीं सकती क्योंकि यह सेना जनता की सेना है। हज़ारों की संख्या में आम लोग इसके संग मिल कर शत्रु से मोर्चा ले रहे हैं—उसकी शक्ति कभी कम नहीं हो सकती।

हमारे अन्दर अनुशासन (Discipline) है, हमने उत्तम फ़ौजी शिक्षा पायी है। हम हार नहीं सकते। हम केवल चीन के लिये ही नहीं लड़ रहे हैं, वरन् यह युद्ध समस्त एशिया की मज़लूम जनता का युद्ध है—हम उस अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिष्ट सेना की टुकड़ी हैं, जो शोषित राष्ट्रों के साम्राज्यवादी शोषण का नाश करने के लिये निरन्तर युद्ध कर रही है।

हमारा ध्येय ऊँचा है, और इसीलिये गौरवशाली भारत से सहायता की याचना का हम साहस भी कर सके हैं।

चीन के स्वयंसेवकों के लिये आर्थिक सहायता हम सहर्ष स्वीकार करेंगे—हम औषधियाँ और सर्जरी के औज़ार खुशी से कबूल करेंगे। हमें डाक्टर और नर्स चाहियें। हम ऐसे स्वयंसेवकों का स्वागत करेंगे जो हमारी आज़ादी की लड़ाई में हमारे संग कंधे से कंधा मिला कर लड़ना चाहते हैं।

हम आशा करते हैं कि आप हमारी अवश्य सहायता करेंगे—और जापानी माल के बहिष्कार का भारत में जोरों से आन्दोलन करेंगे। हमें भरोसा है कि आपकी कांग्रेस भारत की जनता को हमारी आज़ादी की लड़ाई के बारे में बराबर खबर देती रहेगी।

यदि जापानी चीन पर हावी हो गये तो एशिया की पददलित जातियों को अपनी खोई हुई आज़ादी वापस लाने में और भी देर लगेगी—शायद पीढ़ियाँ बीजांय। ······हमारी लड़ाई आपकी लड़ाई है।

एक बार फिर हमारी लाल सेना आपको हार्दिक धन्यवाद देती है।

आपका कामरेड
चू-तेह
कमान्डर-इन-चीफ़
लाल सेना (Route Army)
चीन

निम्न बातें भी अन्त में चीन की विजय-सूचक हैं :—

(१) जापान के राष्ट्रीय कर्ज़ के कुछ आँकड़े—

१९३०-३१	५,९५५,८१६,७६० येन
१९३१-३२	६,१८७,६५७,४७४ ,,
१९३२-३३	७,०५४,१९५,५५१ ,,
१९३३-३४	८,१३९,०३८,३९२ ,,
१९३४-३५	९,०९०,४५४,०२२ ,,

(२) जापान की कुल सम्पत्ति (Reserved Gold) ५० करोड़ येन है।

(३) १९३३ में राष्ट्रसंघ ने प्रस्ताव पास किया है कि जापानियों ने नाजायज़ तरीक़े से मंचुको राज्य की स्थापना की है।

(४) अमरीका, इँगलैंड, भारत आदि सभी देशों ने जापान को दोषी ठहराया है और जापानी माल के बहिष्कार का आन्दोलन उठाया है।

(५) सोवियट रूस ने चीन को सहायता का वचन दिया है।